सिद्धयोग

2017

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : 2[illegible] द्विवार्षिक : 360/-

प्रकाशन तिथि : 01.12.2017

वर्ष : 50; अंक : 9
दिसम्बर 2017

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वेदान्त - शिक्षा

यदा सद्गुरुकटाक्षो भवति तथा भगवत्कथाश्रवण ध्यानादौ श्रद्धा जायते। तस्माद्धृदयस्थितानादिदुर्वासना-ग्रन्थि विनाशो भवति। ततो हृदयपुण्डरीककर्णिकायां परमात्माविर्भावो भवति। ततो दृढ़तरा वैष्णवी भक्तिर्जायते। ततो वैराग्यमुदेति। वैराग्याद्बुद्धिविज्ञानाविर्भावो भवति। अभ्यासात्तज्ज्ञानं क्रमेण परिपक्वं भवति। पक्वविज्ञानाज्जीवन्मुक्तो भवति। ततः शुभाशुभकर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति।।

(त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् 5)

ज्ञानी तत्वदर्शी सद्गुरुदेव के कृपाकटाक्ष का आलम्बन प्राप्त कर भगवत्कथा–श्रवण और ध्यानादि में श्रद्धा की अभिव्यक्ति होती है। उससे हृदयास्थित अनादि दुर्वासना–ग्रन्थि का विनाश होता है।उससे हृदयास्थित सभी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। उससे हृदयकमल की कर्णिका में हृदयेश्वर का आविर्भाव होता है। उससे दृढ़तरा वैष्णवी भक्ति की अभिव्यक्ति होती हैं उससे उत्कृष्ट वैराग्य होता है। वैराग्य से बौद्धविज्ञान का आविर्भाव होता है। अभ्यास से क्रमशः वह ज्ञान परिपक्व होता है। परिपक्व विज्ञान से जीवन्मुक्त होता है। उससे शुभाशुभ सर्वकर्मो का वासना रहित नाश होता है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 50
अंक : 9

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

दिसम्बर
2017

न विद्या येषां श्रीर्न शरणमपीषन्न च गुणाः
परित्यक्ता लोकैरपि वृजिनयुक्ताः श्रुतिजडाः।
शरण्यं यं तेऽपि प्रसृतगुणमाश्रित्यं सुजना
विमुक्तास्तं वन्दे यदुपतिमहं कृष्णममलम्।।

भावार्थ

जिनके पास न विद्या है, न धन है, न कोई सहारा है, जिनमें न कोई गुण है, न वेद शास्त्रों का ज्ञान है; जिनको संसार के लोगों ने पापी समझकर त्याग दिया है, ऐसे मनुष्य भी जिन शरणागत पालक प्रभु की शरण लेकर सन्त बन जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं, उन विश्वविख्यात गुणों वाले अमलात्मा यदुनाथ भगवान् श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ....

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 11
3. श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा -- डॉ.विजय सिंह 15
4. जब डाकिया डाक लाया– जगदीश राए बंसल 18
5. संकल्प शक्ति– कृष्ण कुमार पाण्डेय 20
6. आश्रम समाचार 23
7. सिद्ध–योगियों का पावन–जीवन पथ–प्रदीप है– श्री अलगूराय जी 24
8. साधना का मूल्य– श्री पं. विष्णुदेव जी 26
9. मेरे प्रभूजी– विजय शर्मा 32
10. मेरे श्री गुरुदेव– कृष्णचन्द्र शर्मा 33
11. श्रीमद्भागवत में ध्यान–विधि– आचार्य बलरामजी शास्त्री 36

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

योग साधक के लिए अनुपालनीय नियम

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो! एक योगी जो अपने को उत्थान की ओर ले जाना चाहता है उसके लिए कुछ आवश्यक नियम भी होते हैं। उन नियमों पर चलकर ही वह अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। काल चक्र, जग चक्र और युग चक्र को एक साथ घुमाने वाले मेरे तुम्हारे और सब प्राणियों के आत्मा श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता में उन नियमों का संकेत दिया है। मैं अपने हर योग प्रचार कार्यक्रम में भगवान के इन वचनों को दोहराया करता हूँ। वे वचन हैं–

''विविक्त सेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमान सः
ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।
अहंकार बलं दर्पं काम क्रोधं परिग्रहम
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।''

अर्थात् भगवान् ने साधक के लिए पहली बात कही है 'विविक्त सेवी' एकान्त में रहे। एकान्त में किसको रहना चाहिये? एकान्त में उसे रहना चाहिये जिसका ध्यान लगता हो, जिसकी अन्तर्मुखी वृत्ति बन गई हो। सिद्धान्त की बात एक और भी है–

'वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि य प्रवृवते
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम्।

अर्थात् जो रागी लोग हैं या विषयी व्यक्ति हैं, उनको वन में भी विषय लग जाता है किन्तु जो निन्दित कर्म में प्रवृत नहीं होता, अपनी पाँचों इन्द्रियों को संयमित रखता है तथा जिसका विषयों के प्रति राग छूट गया है उसके लिये घर ही तपोवन है। इसलिए जो विषयी लोग हैं, उनको समाज में ही रहना चाहिए।

'लघ्वाशी' हल्का आहार करना चाहिये ताकि आलस्य निद्रा न सताये। **'सतवाक्कायमानसः'** योगी को अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिए। कम बोलना चाहिये, सत्य बोलना चाहिये। 'यतकाय' शरीर पर नियन्त्रण हो, प्रत्येक चेष्टा युक्त व संयमित हो **'सतमानसः'** अपने मन पर नियन्त्रण रखे। योगी ध्यान करता–करता ऊँची स्थिति को पा जाता है। उस समय यदि मन पर नियन्त्रण नहीं है तो वह किसी का भला करेगा, किसी का बुरा करेगा। मैं तुम्हें इससे सम्बन्धित एक घटना सुनाता हूँ। अमृतसर में दो पढ़ने वाले लड़के थे। उनमें से एक श्री प्रभु जी के चरणों में आ गया था। दीक्षा ले ली। योगी ध्यानी बन गया। दूसरा यूँ ही भटकता था, प्रभु जी का निन्दक ही था। उसने उस ध्यानी लड़के की पुस्तकों का ट्रंक चुरा लिया। समझाने पर भी वह अपनी गलती को नहीं मानता था। ध्यानी लड़का जब ध्यान में बैठता था तो वह देखता था कि उसका तीसरा नेत्र खुल गया है और उस लड़के पर क्रोध की दृष्टि जाती है। उसने ध्यान से उठकर के यह बात श्री प्रभु जी को बताई। प्रभु जी ने कहा–तुम आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठना नहीं तो उसका अनिष्ट हो जायेगा। वह आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठा। आठवें दिन उसने प्रभु जी से ध्यान में बैठने के लिए पूछा–प्रभुजी अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत में व्यस्त थे। उन्होंने सरल भाव से कहा–बैठ जाओ। वह लड़का ध्यान में बैठ गया! कई दिनों का ध्यान प्रवाह रुका हुआ था। मन एकाग्र होते ही वह लड़का सामने दिखाई दिया। बड़ी भद्दी हरकतें करता हुआ दिखाई दिया। इससे उसका क्रोध और बढ़ गया फिर इसने देखा कि उसके तीसरे नेत्र से एक चिन्गारी सी निकली और उस लड़के पर पड़ गई। यह दृश्य दिखाई देने के बाद वह लड़का ध्यान से उठ गया और श्री प्रभु जी के पास जाकर कहने लगा प्रभु जी! आज तो इस प्रकार से हो गया। प्रभु जी कहने लगे ''बस, ठीक है, हम तुम्हें शक्ति देते रहें और तुम दुनिया का अनिष्ट करते रहो। हमने तुमसे कहा था कि ध्यान में नहीं बैठना फिर क्यों बैठे?'' उस विचारे ने पूछ तो लिया था। खैर! हम लोग उस लड़के को देखने के लिए गये। वहाँ जाकर देखा वह लड़का पागल हो गया था उसका दिमाग खराब हो गया। उसने अपनी सारी पुस्तकों को आग लगा दी थी, फिर उसने अपने कपड़े भी जला दिये, अपने कमरे में भी आग लगाने जा रहा था। किन्तु आस पड़ोसियों ने उसे पकड़ लिया। वे लोग उसे पागल खाने ले जा रहे थे। हमने उसे ले जाने नहीं दिया। उसे नेति कराई, नाक से दूध पिलाया सिर को मला, मालिश आदि कराई, वह थोड़ा ठीक हो गया। इसलिये भगवान का आदेश है कि मन पर कन्ट्रोल रखो। मन से भी किसी का अहित चिन्तन न करें। **'ध्यान योग परो नित्यम्'** नित्य ध्यानयोग का अभ्यास करो। मैं तुम्हें रोज–रोज कहता हूँ प्रातः 5 बजे से 7 बजे तक अपने ध्यानाभ्यास में अवश्य बैठा करो। रात्रि को भी सोने से पूर्व कुछ

देर बैठ कर मंत्र जाप करना चाहिये। फिर मन्त्र जाप करते–करते ही शवासन में लेट जाना चाहिये। शवासन को श्री प्रभु जी अमृतासन भी कहते थे। शवासन में लेट कर अभ्यास करने के लिए श्री प्रभु जी स्त्रियों को भी कहा करते थे। वैसे तो आमतौर पर रात्रि में बाँये करवट सोना चाहिए। क्योंकि, रात्रि में वात कफ की अधिकता रहती है इसलिए दाँये स्वर–पिंगला को चलाना चाहिये। किन्तु साधना की दृष्टि से शवासन में ही लेट कर अभ्यास करना चाहिए। शवासन में सुषुम्ना चलती है। जब सुषुम्ना चलने लगे–अर्थात् जब दोनों नासिका से श्वास बराबर चल रहा हो तो कुण्डलिनी में प्रबोध होता है, मन की एकाग्रता बनती है। इस प्रकार शवासन से लेटने पर वृत्ति एकाग्र रहेगी, अच्छे अनुभव होंगे, भजन चलता रहेगा। ऐसी स्थिति के लिए ही कहा गया है–

'सोना तो सबसे भला जो कोई जाने सोया
अन्तर लौ लागी रहे सहज ही सुमिरन होया।'

ध्यानाभ्यास से जो अपने पापों का क्षय कर देता है अथवा गुरु देव की अनुकम्पा को प्राप्त कर लेता है, वह व्यक्ति प्राक्तन् घोर कर्म विपाक को शरीर रहते रहते भोग करके अन्तिम काल में शुद्ध हो जाता है उसके प्राण निकलने में कोई कष्ट नहीं होता। मैं अपने ऐसे बहुत से ध्यानी बच्चों का उदाहरण देता ही रहता हूँ। ध्यान के प्रभाव से, तप के प्रभाव से, स्वाध्याय के प्रभाव से उनको अन्तिम समय में कोई कष्ट नहीं हुआ और वे सद्गति भाजन बन गये। '**अस्तु–वैराग्यम् समुपाश्रितः**' साधक को चाहिये कि वे अपने मन में वैराग्य को धारण करे। संसार की अनित्यता का बार–बार विचार करना चाहिये और किसी वस्तु से, व्यक्ति से राग नहीं करना चाहिये। श्री प्रभु जी कहा करते थे–जो तुम्हारा मन ले ले, वही तुम्हारा वैरी है। वह तुम्हारे मन की शक्ति को खींचता रहेगा और जैसा वह है वैसे ही तुम्हें बना देगा। इसलिये साधक को सावधान रहना चाहिये। किसी में आसक्ति नहीं बढ़ानी चाहिये।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्: साधक अहंकार को छोड़ दे। मनुष्य में कई प्रकार का अहंकार होता है जैसे कर्म करने का अहंकार, बल का अहंकार, धन का अहंकार, विद्या का अहंकार आदि–आदि सब अनिष्ट अहंकार के कारण होता है। इसलिये बल–किसी भी प्रकार का बल हो, उसका दुरुपयोग न करें। **दर्प**–मिथ्याभिमान न करे। **कामम्**–अनेक प्रकार की कामनायें तृष्णायें होती हैं, उनका त्याग करे। **क्रोधम्**–किसी पर क्रोध न करें। क्रोध करने से आन्तरिक शक्ति भी क्षीण होती है और शारीरिक शक्ति भी क्षीण होती है। **परिग्रहम्**–आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह न करे। साधक जीवनोपयोगी कम से कम वस्तु अपने पास रखे। इसलिये परिग्रह न करे। **निर्मम**:–अर्थात् ममता रहित बने। किसी वस्तु

या व्यक्ति में आसक्ति न रखे। यदि साधक भगवान के उपर्युक्त आदेश को मानकर चलता है तो वह परम शांति को पा जाता है और ब्रह्मत्व को पा जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने चित्त को प्रसन्न रखने का उपाय योग दर्शन में बताया है। यदि ये चार बातें साधक अपने अन्दर कायम कर लें, तो उसकी समाधि में विघ्न नहीं पड़ता चित्त प्रफुल्लित रहता है। वे चार साधना हैं–

'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदु:ख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्'

इसका अर्थ यह है साधक सुखी व्यक्ति से मैत्री की भावना, सुहृदयता का व्यवहार रखे। दु:खी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखे। दया दुखियों पर करें जो पुण्यात्मा हैं साधु हैं, उन को देखकर मन में आनन्द का अनुभव करें और जो दुराचारी या पापी व्यक्ति हैं, उनके प्रति उदासीन भाव रखें। इस प्रकार के भाव लाने से योगी के मन में कोई विक्षेप नहीं आता है, उसका चित्त प्रसन्न रहता है। मैं कभी–कभी तुम्हें इस बात का संकेत कर दिया करता हूँ कि तुम्हें अपनी दिनचर्या किस प्रकार की रखनी चाहिए। देखो! साधक को 'युक्ताहार विचार' का सिद्धान्त हमेशा अपने सामने रखना चाहिए। रात्रि को मंत्र जाप करते–करते दस बजे तक सो जाना चाहिए। सुबह ठीक चार बजे उठ जाना चाहिए। उठने के बाद शौच जाना चाहिए। यदि कोष्टबद्धता रहती है, तो नियमित गर्म पानी में नींबू व नमक डाल कर पीना चाहिए। शौच से निवृत्त होकर दातूनादि से दाँत व जीभ ठीक प्रकार से साफ करने चाहिये। नहाने के लिए ठण्डे पानी का प्रयोग उत्तम रहता है। इससे रोमकूप खुल जाते हैं तत्पश्चात् खद्दर के खुरदुरे अंगोछे से शरीर को रगड़–रगड़ कर पौंछना चाहिए। इसके बाद थोड़ा जीवन तत्व साधन अवश्य करना चाहिये। पाँच बजे तक इन कार्यों से निवृत्त होकर आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की आरती करें। उसके पश्चात् मंत्र जाप व ध्यान के लिए बैठ जायें। मंत्र को श्वास–प्रश्वास से जपना चाहिये। यदि इसमें नींद आने लगे तो जीभ से बोल–बोल कर भी जप कर सकते हो। मेरुदण्ड को सीधा रखो ब्रह्मचर्य पूर्वक छ: महीने तक शरीर सीधा रख कर अभ्यास करोगे तो ध्यान लगेगा ही लगेगा। पहले हमारा नियम था जो छ: महीने तक तीन घण्टे बैठ लेता था, उसे ही दीक्षा देते थे और छ: महीने तक जो छ: छ: घण्टे बैठता था, तब शक्तिपात करते थे। अब भीड़भाड़ के कारण यह नियम चल नहीं पाता है। जीवन तत्व एवं योगासन करने से धातु सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। जिसमें साधक ओज तेज से भर जाता है। इसलिए नियमित योगासन अथवा जीवन तत्व आवश्यक है। साधना के विषय में पतंजलि देव का सूत्र याद रखना चाहिए–

'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।'

अर्थात् साधना को लम्बे समय तक करते रहना चाहिए। साल छः महीने में ही उकताना नहीं चाहिए। **नैरन्तर्य**–निरन्तर लगाकर अर्थात् प्रतिदिन करे। **'सत्कारासेवितो'** सत्कार पूर्वक, आदरपूर्वक करे। यही साधन तुम्हें दुःखों से छुड़ा देगा, यही मोक्ष प्रदान करेगा, ऐसी भावना रखते हुए साधना करनी चाहिए तब साधना दृढ़ बनती है। एक और भी बात है, वह है–**तीव्र संवेगानामासन्नः** जो गाढ़ी लगन के साथ साधना करते हैं वह अपने लक्ष्य को जल्दी पाते हैं और जो साधना में शिथिलता बरतते हैं, उन्हें देर में सफलता मिलती है। स्वल्पाहार करोगे, तप करोगे अर्थात् सर्दी–गर्मी, भूख प्यास सहन करते हुये साधना करोगे, तो श्री प्रभु जी की कृपा से ध्यान लगने लगेगा। मैंने तुम्हें बताया था कि ध्यानियों के प्रारब्ध बदल जाया करते हैं। यदि गुरुदेव की कृपा से ध्यान लगता है तो ध्यानियों का भी रजिस्ट्रेशन हो जाता है। अर्थात् मनुष्य जन्म मिलेगा अथवा स्वर्गादि लोकों में जायेगा। निम्न योनियों में नहीं जा सकता। साधकों को एक डायरी रखनी चाहिए। प्रातः संकल्प करो। आज दिन भर में मैं किसी को दुःख नहीं दूँगा। अपनी चेष्टाओं और मन पर नियन्त्रण रखूँगा आदि। फिर शाम को सोने से पहले अपनी पूरी दिनचर्या को देखो, आज कहीं गलत काम तो नहीं हो गया, साधना में कितना मन लगा इत्यादि बातों पर विचार कर अपने दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करो।

मेरे बच्चे अधिकांश घर–गृहस्थी वाले हैं। मैं तो अपने हर गृहस्थी बच्चे को एक बात जोर देकर कहा करता हूँ कि पति–पत्नी में परस्पर प्रेम रहना चाहिये। दोनों को एक प्राण होकर रहना चाहिये, इससे साधना में किसी प्रकार का विघ्न नहीं आता। मनु महाराज का वचन है–

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता, भार्या भर्त्ता तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं सर्वम् तद् रोचते गृहम्।।

अर्थात् जिस परिवार में पत्नी से पति खुश रहता है और पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, तो वहाँ सब प्रकार से सुख सम्पत्ति का वास रहता है, लक्ष्मी बरसती है और किसी प्रकार की बीमारी नहीं आती तथा उत्तम संतान की प्राप्ति होती है। किन्तु, घर में यदि रोज कलह रहता है, द्वन्द्व मचता है तो निश्चित जान लो कि दरिद्रता आयेगी, बीमारियाँ बढ़ेंगी और सन्तान भी अच्छी नहीं होगी। इसलिए हर गृहस्थी साधक को परस्पर प्रेम से रहना चाहिये।

योग साधकों को ध्यानाभ्यास के साथ–साथ यम नियमादि का भी पूरा–पूरा पालन करना चाहिये! उन्हें यह भी नहीं सोचना चाहिये कि पहले हम यम–नियम का ही पालन कर लेंगे, फिर ध्यानाभ्यास में बैठेंगे। यम नियमादि जो योग के पाँच बहिरंग साधन हैं, उनमें आँख बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनमें अपने व्यवहार में यम–नियमादि को अपनाना

पड़ता है। मैंने तुम्हें कई बार यह बताया है कि जो यम–नियमों का पालन नहीं करता और जिसने गुरुदेव के थपेड़े खाकर साधना नहीं की, उसका पतन हो जाया करता है। योग के एक अंग का ही यदि ठीक प्रकार से पालन हो जाये, तो वह एक अंग ही हमें समाधि द्वार तक पहुँचा देता है। यम नियमों में सर्वप्रथम स्थान अहिंसा का है। योगी को **'सर्वभूत हितेरताः'** की भावना से युक्त होकर मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए। वस्तुतः अहिंसा की पूरी–पूरी प्रतिष्ठा तो योगी को समाधि मिल जाने पर ही होती है। जब तक योगी **'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'** की स्थिति में नहीं पहुँच जाता अथवा **'शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शिनः'** के सिद्धान्तानुसार सब प्राणियों में आत्मदर्शन नहीं कर लेता, तब तक कोई भी पूर्ण रूप में अहिंसक नहीं हो पाता।

अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाने पर, हिंसक प्राणियों में भी अहिंसा भाव का उदय हो जाता है। मुझे एक घटना याद आई है। एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने कुछ शिष्यों के साथ ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगल में घूमने गये। श्री मुल्खराज जी महाराज भी उनके साथ थे, उन दिनों उनकी तुरीय स्थिति बनी हुई थी। घूमते–घूमते अचानक एक बाघ निकल आया। सब लोग डरने लगे। श्री प्रभु जी ने अभयदान दिया। सभी शांत खड़े रहे। ज्यों ही वह बाघ श्री मुल्खराज जी के समीप आया, वह पूँछ हिलाने लगा।

श्री मुल्खराज जी ने उसके सिर पर हाथ फेर कर प्यार किया। थोड़ी देर में वह अपने आप दूर चला गया। इसी का नाम है **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः'**।

अहिंसा के बाद सत्य दूसरा यम है। इस व्रत का भी पालन करना बहुत आवश्यक है जो व्यक्ति पूर्णतया सत्यवादी हो जाता है, उसकी वाणी में ताकत आ जाती है। योगदर्शन में सत्य व्रत पालन करने का फल बताया है–**''सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्''** सत्य प्रतिष्ठा से योगी की वाणी क्रियाफलवती हो जाती है। **'अमोघाऽस्यवाक्भवति'** की स्थिति आ जाती है। वह अमोघ वाणी वाला बन जाता है और धीरे–धीरे वह ऋतम्भरा प्रज्ञा तक भी पहुँच जाता है। मैं तुम्हें अपने एक गुरु भाई का उदाहरण देता हूँ। (यह घटना गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की अपनी आप बीती घटना है। गुरुदेव जी ऐसे दृष्टांत समझाते हुए अपनी ही घटनायें बताते थे किन्तु अपना नाम नहीं आने देते थे) वह गुरु भाई अपने मुख से जो कह दिया करते थे, वह पूर्णतया सत्य होता था। सत्य बोलने का यह पवित्र व्रत उसे बाल्यकाल से ही, उनके पिता के द्वारा दृढ़ बना दिया गया था। एक बार वे योग प्रचार करते हुए रोहतक जिला में किसी गाँव में गये। वहाँ पर एक ब्राह्मण बालक को भूतोन्माद की बीमारी लगी हुई थी। उसका इलाज उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति से किया और उसे आराम हो गया। इसके

फलस्वरूप इस गाँव में उनके सत्संग का काफी प्रचार हो गया। उस गाँव में वह महात्मा दस पन्द्रह दिन तक रहे। इसके बाद उनका कार्यक्रम किसी दूसरे स्थान में निश्चित हो चुका था।

निर्धारित दिन में उन्हें दिन की गाड़ी पकड़नी थी। स्टेशन वहाँ से पाँच–छः किलोमीटर दूर था। महात्मा जी गाड़ी पकड़ने के लिए चलने वाले थे कि अचानक वर्षा शुरू हो गई ओले पड़ने लगे। सत्संगियों ने कहा–महाराज! ऐसे में जाना तो अत्यन्त कठिन है। आप आज का कार्यक्रम स्थगित कर दें। माघ का महीना था। महात्मा जी सत्यवादी थे। अतः अपने वचन की रक्षा के लिए ऐसी स्थिति में भी चलने को तैयार हो गये। सवारी भी कोई जा नहीं सकती थी। महात्मा जी ने अपने सत्संगियों से कहा कि तुम हमारा बिस्तर और शेष सामान बाद में पहुँचा देना। अपने वचन का पालन करने के लिए वर्षा में ही एक छाता लेकर वे चल पड़े। सभी गाँव वालों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि महात्मा जी आधा फर्लांग भी नहीं गये थे कि वर्षा रुक गई। बादल हट गये आकाश स्वच्छ हो गया। सत्संगी भी उनके पीछे सामान लेकर चल पड़े। उनके सत्य संकल्प के कारण वे ठीक समय पर पहुँचे और गाड़ी पकड़ ली। वह महात्मा जी की सत्य संकल्पता का ही परिणाम था। सत्य वादन के एक साल के अनवरत अभ्यास करने से योगी को वाक्सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कटु सत्य भी न बोले। कटु सत्य में अनेक प्रकार की हानियाँ निहित रहा करती हैं। सत्यवादी व्यक्ति यदि साथ में ध्यान योगी भी है तो उसके लिये बुद्धि का आलोक खुल जाता है, उसे स्फुट प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। साधक के लिये ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन तो आवश्यक है ही–

'ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुम् समर्थो भवति।'

ब्रह्मचारी अपने शिष्यों पर शक्तिपात कर सकता है अणिमादि सिद्धियाँ ब्रह्मचारी को सहज ही मिल जाती हैं। इसलिये साधक को अपनी इन्द्रियों पर निग्रह रखना चाहिये, यह बहुत बड़ा तप है। साधक को अस्तेय व्रत का भी पालन करना चाहिये। 'अस्तेय' का अर्थ है मन से चोरी का भाव निकाल देना। इस भाव की प्रतिष्ठा हो जाने पर **'अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम'** अर्थात् योगी के सम्मुख सब रतन अपने आप उपस्थित हो जाया करते हैं। अपरिग्रह का पालन भी जरूरी है। अपनी धन सम्पत्ति में आसक्ति का न रखना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह से संतोष मिलता है। इस व्रत के स्थैर्य से **'जन्मकथान्तसंबोधः'** आगे पीछे जन्म की बातें याद रहने वाली हैं। जिला मैनपुरी में हमारा एक शिष्य रघुनन्दन लाल शास्त्री है। उनकी एक लड़की है। वह पिछले जन्म में रेल के नीचे कट कर मर गई थी। पिछले जन्म में मेहतर कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पति और घर वाले उसे बहुत मारते

पीटते थे। इसलिए एक दिन उस लड़की ने आत्म हत्या कर ली। इस लड़की को इस जन्म में भी पूर्व जन्म की सारी बातें याद हैं। लोक में भी ऐसी बातें कभी–कभी घट जाती हैं। किन्तु यह योग की बात नहीं है। इस प्रकार से ये पाँच यम हैं। इसमें से यदि एक की भी साधना हो गई तो साधक मुक्ति द्वार तक पहुँच सकता है। यमों के साथ–साथ नियमों का भी पालन करना चाहिये। पहला नियम शौच है। यह दो प्रकार का होता है एक बाहर का दूसरा भीतर का। शरीर वस्त्र आदि को स्वच्छ व शुद्ध रखना बाह्य शौच है। शुभ भावों से अन्तःकरण को पवित्र रखना भीतरी शुद्धि है। अन्तःकरण शुद्धि के बिना, पर दर्शन नहीं हो सकता। संतोष का भी अपना महत्व है। इसी प्रकार से तप और स्वाध्याय भी क्रिया योग के अन्तर्गत आते हैं–ये दोनों अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाले उत्तम साधन हैं। **'तपसा चीयते ब्रह्म'** तप के द्वारा ही ब्रह्म दर्शन होता है। स्वाध्याय से इष्ट देव सिद्धि एवं ऋषियों के दर्शन संभव होते हैं। इस प्रकार से तप व स्वाध्याय को बढ़ाता हुआ साधक ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है। सतोगुण के विकास होने पर ईश्वर प्रणिधान् अर्थात् आत्म समर्पण होता है।

साधक को अपना आचार विचार ठीक रखना चाहिये। **'आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः'** अर्थात् आचार हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आहार विहार योगी का युक्त होना चाहिए।

गीता में भगवान का आदेश है–

'युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अधिक खाने अथवा बिल्कुल न खाने से योग सिद्ध नहीं होता। कर्मों के प्रति भी चेष्टा युक्त होना चाहिए। अनावश्यक चपलता ठीक नहीं होती। शरीर को चंचल रखने से मन का भी चंचल रहने का स्वभाव बढ़ जाता है। समय पर सोना, समय पर जागना उचित है। इस प्रकार से अपनी नियमानुवर्तिता का पालन करने से योग समस्त दुःखों का हरण करने वाला बन जाता है।

साधक को अपने आप को हर समय व्यस्त (निरत) रखना चाहिये। चलते फिरते उठते–बैठते गुरु मंत्र का जाप करते रहना चाहिये। जो ऐसा करेंगे, श्री प्रभु जी उनकी अवश्य सहायता करेंगे।

बार–बार आशीर्वाद।

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

सम्पादकीय–

श्री मद्भागवत महापुराण में योग शिक्षा

आचार्य (डा.) दासलाल जी महाराज

(श्री मद्भागवत पुराण में योग तत्व का कई स्कन्धों में बहुत सुन्दर विवेचन मिलता है। जिनमें भक्तियोग, प्राणायाम एवं समाधि का विशद् वर्णन हुआ है। इसमें विशेष रूप से तृतीय स्कन्ध में कपिल भगवान् व माता देवहुति का संवाद कई अध्यायों में वर्णित हुआ है। माता देवहुति को समझाते हुये कपिल भगवान् कहते हैं–मानव के तीनों तापों के शमन के लिये योग ही ऐसा उपाय है जिससे दुःखों का समूल निवारण किया जा सकता है। भक्तियोग व ध्यान–योग का बहुत सुन्दर वर्णन कपिल मुनि ने किया है। ज्ञान और शिक्षा की दृष्टि से इस अध्याय का महत्वपूर्ण स्थान है। सांख्य का पुरुष प्रकृति–विवेक भी इसका प्रतिपाद्य विषय है। इसी प्रकार से अवधूतोपाख्यान में 24 गुरुओं का वर्णन मिलता है। जो साधकों के लिये बहुत ही शिक्षाप्रद है।

एकादश स्कन्ध में स्वधाम गमन से पूर्व अपने प्रिय भक्त एवं सखा उद्धव को योग का तात्विक उपदेश विस्तार से किया है। इस लेख में मैंने उसी विषय को प्रकाशित व प्रकट किया है।)

उद्धव जी ने भगवान् से पूछा–प्रभो! ब्रह्मवादी महात्मा आत्मकल्याण के लिये अनेक साधन बतलाते हैं उनमें से श्रेष्ठ एवं परम कल्याण करने वाले साधन का आप मुझे उपदेश कीजिये। आपने अभी भक्तियोग को ही निरपेक्ष एवं स्वतन्त्र साधन बतलाया है क्योकि इसी से सब ओर से आसक्ति छोड़कर मन आप में ही तन्मय हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र बोले–प्रिय उद्धव! ज्ञान रूप वेदवाणी समय के फेर से प्रलय के अवसर पर लुप्त हो गई थी फिर जब पुनः सृष्टि का समय आया तब मैंने अपने संकल्प से ही इसे ब्रह्मा को उपदेश किया।

फिर आगे उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वायम्भुव मनु को उपदेश किया। मनु से आगे भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलह, अत्रि, पुलस्त्य और क्रतु इन सात प्रजापति महर्षियों ने ग्रहण किया। तदनन्तर इन ब्रह्मर्षियों की सन्तान देवता, दानव, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुष ने यह ज्ञान प्राप्त किया। सभी जातियों और व्यक्तियों के स्वभाव, उनकी वासनायें, सत्व, रज और तमोगुण के कारण भिन्न-भिन्न हैं। इसीलिये वे सभी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार उन वेदवाणी का भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण करते हैं। यह वाणी ही ऐसी है जिसका विभिन्न अर्थ निकलना स्वाभाविक है। इस प्रकार स्वभाव भेद, तथा परम्परागत उपदेश भेद से मनुष्यों की बुद्धि में भिन्नता आ जाती है और कुछ लोग तो बिना विचारे ही वेद विरुद्ध एवं पाखण्ड का अवलम्ब लेते हैं। प्रिय उद्धव! सभी की बुद्धि मेरी माया से मोहित हो रही है। इसी से वे अपने कर्म संस्कार और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आत्म कल्याण के अनेकों साधन बतलाने लगते हैं।

कर्मयोगी लोग यज्ञ, तप, दान, व्रत और यम-नियम को पुरुषार्थ मानते हैं परन्तु ये सभी कर्म हैं। इनके फलस्वरूप जो लोक मिलते हैं वे उत्पत्ति विनाश वाले हैं। कर्मों का फल समाप्त होने पर उन्हें दुःख ही मिलता है और सच पूछो तो उनकी अंतिम गति घोर अज्ञान ही है। उन्हें जो सुख मिलता है तुच्छ तथा नगण्य है। प्रिय उद्धव! जो सब ओर से निरपेक्ष हो गया है किसी भी कर्म के फल की आवश्यकता नहीं समझता और अपने अन्तःकरण को सब प्रकार से मुझे ही समर्पित कर चुका है परमानन्द स्वरूप मैं उसकी आत्मा के रूप में स्फुटित होने लगता हूँ। इससे वह जिस सुख को अनुभव करता है वह सुख विषय लोलुप को किसी भी प्रकार से नहीं मिल सकता। हे उद्धव! सुनो—**अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतासः मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।**

अर्थात्—जो सब प्रकार से संग्रह परिग्रह से रहित अकिंचन है जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके शान्त और समदर्शी है जो मेरी प्राप्ति से ही मेरे सानिध्य का अनुभव करके ही सदा सर्वदा पूर्ण सन्तोष का अनुभव करता है उसके लिये आकाश का एक-एक कोना आनन्द से भरा हुआ है। जिसने अपने को मुझे सौंप दिया है वह मुझे छोड़कर तो न ब्रह्मा का पद चाहता है और न देवराज इन्द्र का, उसके मन में न तो सार्वभौम सम्राट बनने की इच्छा होती है और न स्वर्ग या रसातल का स्वामी होना चाहता है। वह योग की बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ और मोक्ष तक की अभिलाषा नहीं करता, उद्धव! मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, सगे भाई बलराम जी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मी जी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है—हे उद्धव! **निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम्**

अनुव्रजामि अहं नित्यं, पूयेयेत्यङ्घ्रि रेणुभिः। अर्थात् जिसे किसी की अपेक्षा नहीं है, जो जगत के चिन्तन से सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन–चिन्तन में तल्लीन रहता है और राग–द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है उस महात्मा के पीछे–पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणों की **धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाये और मैं पवित्र हो जाऊँ।** उद्धव! जो सब प्रकार से संग्रह–परिग्रह से रहित है यहाँ तक कि शरीर आदि में भी अहंता–ममता नहीं रखते, जिनका चित्त मेरे ही प्रेम के रंग में रंग गया है, जो संसार के वासनाओं से उपराम हो चुका है और जो अपनी महत्ता–उदारता के कारण स्वभाव से ही समस्त प्राणियों के प्रति दया और प्रेम का भाव रखते हैं किसी प्रकार की कामना उनकी बुद्धि का स्पर्श नहीं करती उन्हें मेरे जिस परमानन्द स्वरूप का अनुभव होता है उसे कोई और जान नहीं सकता क्योंकि वह परमानन्द तो केवल निरपेक्षता से ही प्राप्त होता है। उद्धव जी! जो मेरा भक्त जितेन्द्रिय नहीं हो सका है और संसार के विषय उसे बार–बार बाधा पहुँचाते हैं अपनी ओर खींच लिया करते हैं वह भी क्षण–क्षण में बढ़ने वाली मेरी प्रगल्भ भक्ति के प्रभाव से प्रायः विषयों से पराजित नहीं होता। उद्धव! जैसे धधकती हुई अग्नि लकड़ियों के ढ़ेर को भी जलाकर खाक कर देती है वैसी ही मेरी भक्ति भी समस्त पाप राशि को पूर्णतया जला डालती है।

उद्धव! भक्ति से जितनी जल्दी प्राप्त हो जाता हूँ उतनी जल्दी अन्य साधनों से नहीं–

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव!
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता:।।

योग की साधनायें, ज्ञान विज्ञान, धर्मानुष्ठान जप पाठ और तप त्याग मुझे प्राप्त कराने में उतने समर्थ नहीं हैं जितनी दिनोंदिन बढ़ने वाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति। मैं सन्तों का प्रियतम आत्मा हूँ। मैं अनन्य श्रद्धा और भक्ति से ही पकड़ में आता हूँ। मुझे प्राप्त करने का यह एक ही उपाय है। मेरी अनन्य भक्ति उन लोगों को भी चाण्डाल आदि जाति–दोष में हैं उनको भी पवित्र कर देती है। इसके विपरीत जो मेरी भक्ति से वंचित हैं, उनके चित्त को सत्य और दया से युक्त, धर्म और तपस्या से युक्त विद्या भी भली भाँति पवित्र करने में असमर्थ है। भक्ति से जब तक सारा शरीर पुलकित नहीं हो जाता, चित्त पिघल कर गद्‌गद् नहीं हो जाता, आनन्द के आँसू आँखों में छलकते नहीं हैं तथा अन्तरंग और बहिरंग भक्ति की बाढ़ में डूबने उतरने नहीं लगता तब तक उसके शुद्ध होने की संभावना नहीं है। जिसकी वाणी प्रेम में गद्‌गद् हो रही है, एक क्षण के लिये भी रोने का तांता नहीं टूटता परन्तु कभी–कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है, कहीं लज्जा छोड़कर स्वयं गाने व नाचने लगता है। मेरा वह

भक्त न केवल स्वयं को बल्कि सारे संसार को पवित्र कर देता है। जैसे आग में तपाने पर सोना मैल छोड़ देता है और अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है वैसे ही भक्ति योग के द्वारा आत्मा कर्म वासनाओं से मुक्त होकर मुझको प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मैं ही उसका वास्तविक स्वरूप हूँ।

उद्धव जी! मेरी परम पावन लीला कथा के श्रवण कीर्तन से ज्यों–ज्यों चित्त का मैल धुलता है, त्यों–त्यों उसे सूक्ष्म वस्तु के वास्तविक दर्शन होने लगते हैं। जो मनुष्य निरन्तर विषय चिन्तन करता है उसका चित्त विषयों में फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है वह मुझ में तल्लीन होने लगता है।

इसलिए तुम दूसरे साधनों तथा फलों का चिन्तन छोड़ दो। अरे उद्धव! मेरे अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं अतः मेरे चिन्तन से तुम अपना चित्त शुद्ध कर लो और उसे पूरी तरह से एकाग्रता से मुझ में ही लगा दो।

संयमी पुरुष स्त्रियों और स्त्रिसंगियों का संग दूर से ही छोड़कर पवित्र एकान्त स्थान में बैठकर बड़ी–सावधानी से मेरा ही चिन्तन करें। प्यारे उद्धव! स्त्रियों के संग से और स्त्रिसंगियों के, लम्पटों के संग से पुरुष को जैसे क्लेश और बन्धन में पड़ना पड़ता है वैसा क्लेश और फंसावट और किसी के भी संग से नहीं होती। अतः तुम विषयी लोगों का संग त्यागकर सदा मेरे चिन्तन में ही लगे रहो।

(क्रमशः)

लोग कहते हैं ''पहले योग्य बनो, फिर इच्छा करो।'' वेदान्त कहता है ''पहले योग्य बनो, इच्छा करने की कोई आवश्यकता नहीं।'' जो पत्थर दीवार में लगाए जाने योग्य है, वह रास्ते में पड़ा हुआ कभी नहीं मिल सकता। यदि तुम परमात्मा के अटल नियम द्वारा अपने में योग्यता उत्पन्न करोगे तो प्रत्येक वस्तु आप से आप तुम्हारी ओर चली आवेगी। जलता हुआ लैम्प पतंगों को बुलाने नहीं जाता, पतंगे स्वयं लैम्प के चारों ओर इकट्ठे होते हैं।

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

पुरुरवा के पाँचवे पुत्र विजय के वंश में महात्मा जह्नु हुये हैं जिन्होंने अपने योग-तप बल से गंगाजी को अंजुलि में लेकर पी गये थे। इसी वंश में गाधि हुये हैं, इनकी कन्या का नाम सत्यवती था। महर्षि ऋचिक से सत्यवती का विवाह हुआ। एक बार महर्षि ऋचिक से उनकी पत्नी एवं सास दोनों ने ही पुत्र प्राप्ति के लिये प्रार्थना किया। महर्षि ने दोनों के लिये अलग-अलग मन्त्रों से चरु पकाया और स्नान करने चले गये। इधर माँ एवं बेटी ने अदला-बदली करके चरु को ग्रहण किया। जब महर्षि को यह बात पता चली तो वे अपनी पत्नि सत्यवती से बोले-तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला। अब तुम्हारा पुत्र तो दण्ड देने वाला घोर प्रकृति का होगा तथा तुम्हारा भाई एक श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता होगा। सत्यवती ने बड़ी प्रार्थना की तब प्रसन्न हो ऋषि ने कहा-अच्छी बात है। पुत्र के बदले पौत्र वैसा होगा। समय पर सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ। बड़े होकर जमदग्नि ने रेणु ऋषि की कन्या रेणुका से विवाह किया। जमदग्नि ऋषिके सबसे छोटे पुत्र परशुराम जी थे। हैह्य वंश का अन्त करने के लिए स्वयं भगवान ने ही परशुराम के रूप में अंशावतार लिया था।

उन्हीं दिनों हैहयवंश का महाबली राजा अर्जुन था। उसने नारायण के अंशावतार दत्तात्रेय जी को प्रसन्न कर उसने एक हजार भुजायें और अपरमित बल का वरदान प्राप्त कर लिया। वह योगेश्वर हो गया था। उसमें ऐसा ऐश्वर्य था कि वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल से स्थूल रूप धारण कर लेता। सभी सिद्धियाँ उसे प्राप्त थीं। वह संसार में वायु की तरह सब जगह विचरा करता-

योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः।
चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा।।19।।

अ. 15 स्क. 9

यहीं सहस्त्रार्जुन ने दशमुख रावण को पकड़ कर अपनी राजधानी में ले जाकर बंदर के समान कैद कर लिया था। एक दिन सहस्त्रबाहु अर्जुन शिकार खेलते हुये, दैववश जमदग्नि

मुनि के आश्रम पर पहुँचे। परम तपस्वी जमदग्नि मुनि के आश्रम में कामधेनु रहती थी। उसके प्रभाव से मुनि ने सेना सहित हैहयराज का खूब स्वागत–सत्कार किया। अहंकार और अकृतज्ञता बड़े–बड़ों को संकट में डाल देती है। राजा ने सेवकों को आज्ञा दी कि कामधेनु को छीन ले चलो। सेवक बलपूर्वक कामधेनु को ले गये। उधर जब परशुराम जी आश्रम पर आये और राजा द्वारा अकृतज्ञता एवं दुष्टता की बात सुना।

सहस्त्रबाहु अभी अपने नगर में प्रवेश करने ही वाला था कि देखा भयंकर फरसा से युक्त परशुराम जी आँधी के वेग से चले आ रहे हैं। सहस्त्रबाहु अर्जुन ने भारी सेना परशुराम जी से लड़ने को भेजा परन्तु गाजर–मूली की तरह समस्त सेना को अकेले धराशायी कर सहस्त्रबाहु अर्जुन के सभी भुजाओं को काट अन्त में परशुराम जी ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

परशुराम जी ने कामधेनु को उसके बछड़े के साथ लेकर आश्रम पर लौटे और सारा वृतान्त पिताजी एवं अपने बड़े भाइयों को कह सुनाया। जमदग्नि मुनि सुनकर बड़े दुःखी हुये कि सहस्त्रबाहु को परशुराम जी ने मार डाला है। उन्होंने–परशुराम जी को क्षमा की महिमा बताते हुए बोले–बेटा! सार्वभौम राजा का वध ब्राह्मण की हत्या से भी बढ़कर है। जाओ, भगवान का स्मरण करते हुए तीर्थों का सेवन करके अपने पापों को धो डालो–

राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः।
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः।।4।।

अ. 15 स्क. 9

भगवान परशुराम जी के अलौकिक कृत्य अनेक हैं उनमें पिता की आज्ञा मानकर अपनी माता और भाइयों को मार डालना क्योंकि उन्हें अपने पिता के योग तपस्या का प्रभाव ज्ञात था।

रामः संचोदितः पित्रा भ्रातृन् मात्रा सहावधीत्।
प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च सः।।6।।

अ. 16 स्क. 9

पिता ने परशुराम जी के इस आज्ञा पालन से अति प्रसन्न हो कहा–बेटा! तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर माँग लो। परशुराम जी ने कहा–पिताजी! मेरी माता समेत मेरे भाई जीवित हो जायँ तथा उन्हें यह याद न रहे कि हमने उन्हें मारा था। परशुरामजी के कहते ही जैसे कोई सोकर उठे, सब सकुशल जीवित उठ बैठे। परशुराम जी ने अपने पिताजी का तपोबल जानने के कारण अपने पूज्यों का वध पिता की आज्ञा से किया था।

इस घटना का मूल कारण रेणुका जी का मानसिक व्यभिचार था। वे नदी से जल लेने गयी थीं। उस समय गंधर्वराज चित्ररथ अप्सराओं के साथ जल क्रिड़ा में मग्न था। यह देखकर रेणुका का मन थोड़ा विचलित हो गया था। त्रिकाल दर्शी महात्मा जमदग्नि से यह बात छिपा नही रहा, उन्होंने अपनी पत्नी का वध करने का आदेश अपने अन्य बेटों को दिया परन्तु वे इसे जघन्य कृत समझते हुए अपने को असमर्थ जताया। अन्त में ऋषि ने छोटे बेटे परशुराम जी को आज्ञा दिया वे अपने पिता के तेज योग-बल को जानते थे अतः बिना संकोच आज्ञा का यथावत पालन किया और पुनः वरदान में उन्हें जीवित करवाया।

कुछ समय बाद सहस्त्रबाहु अर्जुन के हजारों पुत्रों ने, जमदग्नि ऋषि जब समाधिस्थ थे उनके सिर को काटकर ले गये। परशुराम जी की माता रेणुका-कातर भाव से परशुराम-परशुराम शीघ्र आओ कह-कह कर रोने लगीं। परशुराम जी आये और घटित घटना से क्रुद्ध हो माहिष्मती नगरी में जाकर सहस्त्रबाहु के पुत्रों परिजनों के सिर काटकर बड़ा पहाड़ खड़ा कर दिया।

क्रोध शांत होने पर, तप में लीन होकर परशुराम जी आज भी शांत चित्त से महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं। वहाँ सिद्ध, गन्धर्व, चारण उनके मधुर चरित्र का गान करते रहते हैं।

आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः।
उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणौ।।26।।

अ. 16 स्क. 9

महर्षि जमदग्नि को स्मृतरूप संकल्पमय शरीर की प्राप्ति हो गयी। परशुराम जी से सम्मानित होकर वे सप्तर्षियों के मण्डल में सातवें ऋषि हो गये।

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम्।
ऋषिणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमों रामपूजितः।।24।।

अ. 16 स्क. 9

जब डाकिया डाक लाया

जगदीश राए बंसल ''अधम''

गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की लीलायें लिखना इतना अनन्त है जितना भक्त शिरोमणी बाबा तुलसीदास जी महाराज ने हरी अनन्त हरी कथा अनन्ता कहा है। चूंकि इस प्रकार की महान आत्माएँ अपने संस्कारी भक्तों के लिए युग युगान्तर तक पूज्यनीय रहती हैं और उनका तपस्या स्थल वन्दनीय बना रहता है।

गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपनी लगभग पन्द्रह वर्ष की किशोरावस्था में ही अपने ऋषिकेश में अखिल ब्रह्माण्डनायक जगत नियन्ता गुरुओं के महाप्रभू अखण्ड ज्योति श्री राम लाल जी महाराज जी से सन् 1926 में दीक्षा ली थी। श्री प्रभू जी के भौतिक शरीर के रहते गुरुजी को लगभग बारह वर्ष सेवा करने का सौभाग्य रहा। श्री प्रभूजी की कृपा से गुरु जी को दिव्यानुभव एवं योगानुभूतियों के अतिरिक्त अपने पूर्व जन्म का ज्ञान भी हो गया था कि मैं पूर्व जन्म में नेपाल की गण्डकी नदी पर त्रिवेणी धाम में— समाधिस्थ रहा करता था। वहाँ उस वृद्ध शरीर को त्याग कर गांव अलुपूर में पिता पं. देवीराम के घर माता चरती के गर्भ से जन्म पाया हूँ।

श्री प्रभू जी जब–जब ऋषिकेश आश्रम से बाहर जाते थे तो अन्य वरिष्ठ शिष्यों के रहते हुए भी गुरुदेव को ही कार्य भार की चाबी सौंप कर जाते थे। इस अवधि में गुरुदेव जी के मन ही मन रह–रह कर तीव्रतम लहरें उठती थीं कि मैं कहीं एकान्त वन खण्ड में जाऊँ....., घोर तपस्या करूँ..., दीर्घ अनुष्ठान करूँ..., अनुष्ठान तो पहले भी किए, मगर मन की प्यास शान्त नहीं हुई, इस बार प्रवृत्ति मार्ग छोड़ कर निवृत्ति मार्ग अपनाऊँ..., यहाँ आश्रम में रह कर तो भगवत् साक्षात्कार में, योग विभूति में, दिव्य प्रकाश दर्शन में बाहरी हस्तक्षेप हो ही जाता है।

परिणामतः एक दिन गुरुजी की श्री बद्रीनारायण मन्दिर से आगे सतपथ की ओर वन खण्ड में जाने की प्रबल धारणा बन गई। अतः धोती कुर्ता धारी जी ने अपनी जटाओं में वट वृक्ष का दूध भर लिया, शरीर में भस्म रमा ली, धोती के स्थान पर मृग छाला धारण कर ली, हाथ में कमण्डल और कन्धे पर कम्बल डाल कर श्री प्रभू जी को प्रणाम किया। उस समय आश्रम में एक मात्र वरिष्ठ गुरुभाई श्री चिरन्जी लाल ही थे। गुरुजी ने उसको आश्रम का कार्य भार सम्भाल कर निवेदित किया कि भाई जी, मैं उत्तराखण्ड सतपथ की ओर साधना करने

के लिए जा रहा हूँ–कृपा करके आप जगत नियन्ता श्री प्रभू के पधारने पर श्री चरणों में हमारा बार–बार प्रणाम कह देना। इस समय दिन के लगभग ग्यारह बजे का समय था। आनन्द सिन्धू गुरुदेव जी, ''जय गुरुदेव'' कह कर आश्रम से चल पड़े।

मन की लहरें साकार हुई,

है भक्ति का सवाल।

सिद्धेश्वर का सिद्ध चला,

है हरियाणे का लाल।।

जैसे ही करुणा सागर जी ने अपना दायाँ पैर गेट के बाहर रखा उसी समय डाकिया डाक लाया और एक पत्र जटाधारी जी को थमा दिया। यह पत्र गुरुजी के नाम त्रिकाल दर्शी–अन्तर्यामी श्री प्रभूजी ने अल्मोड़ा से भेजा था। पत्र में लिखा था कि बेटा, चन्द्रमोहन, हम बस्ति में बैठे हैं, तुम वन खण्ड में जा रहे हो यह उचित नहीं है। अभी जितने काम अधूरे पड़े हैं सब तुमको करने हैं। श्री महाप्रभूजी महाराज तुमसे बड़े–बड़े काम करायेंगे। तुमने जो कदम आगे बढ़ाया है, उसको पीछे हटा लो। यह हमारी आज्ञा है। **गुरोराज्ञानुलघनीया** पथ के पथिक लखदातार जी ने अपना कदम पीछे हटा लिया। गुरुजी को श्री प्रभू के अन्तर्यामी एवं हितैषी होने का महान आश्चर्य एवं महान आनन्द हो रहा था। उन्होंने तुरन्त अपनी जटा धो डालीं और पहले वाली वेशभूषा धारण करके गुरु दरबार में पेश हुए। श्री प्रभूजी की आज्ञा बिना स्वयं के वनखण्ड निर्णय पर पश्चाताप कर दण्डवत प्रणाम किया और पुनः आश्रम की सेवा में जुट गए।

अब देखिए, अपने सिद्धेश्वर जी जैसे महान आत्माओं के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से कोई भी साधक नहीं जान सकता। मगर मन में तो अनेक प्रश्न उछलते हैं जैसे कि अगर महाप्रभु जी महाराज, गुरुजी को पत्र ही न भेजते अथवा गुरुजी महाराज पत्र पढ़कर अपना कदम पूर्ववत न लौटाते तो हमारे जैसे कितने गुरु भाई बहिनों का जीवन अन्धकार में ही व्यतीत होता।

पारलौकिक दृष्टि से हम अपना आत्म निरीक्षण करके देखें तो पायेंगे कि गुरुत्व के अतिरिक्त हमारी उपलब्धियाँ शून्य के समक्ष ही हैं। गुरुजी ने ही हमारा अन्तर्जगत में प्रवेश किया–हमारे कठिन कलेश कर्मों का भुगतान सूक्ष्म रूप से किया–हमें पुनर्जन्म मनुष्य का ही पा जाने का खुला आशीर्वाद लुटाया–अपने प्रत्येक तड़पते और निराश संस्कारी बच्चों की मनोकामनायें पूर्ण की और आज भी उसी प्रकार से पूर्ण कर रहे हैं जैसे कि अपना भौतिक शरीर के रहते हुए किया करते थे। ऐसे दुर्लभ आराध्या देव जी के श्री चरणों में हमारा लख–लख नमन–प्रणाम और निवेदन कि ये नाम **खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।**

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

संकल्प शक्ति

कृष्ण कुमार पाण्डेय, प्रवक्ता, गोरखपुर

योग के संबंध में बताते हुए योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को योगी बनने का उपदेश दिया। भगवान ने बताया कि योगी का स्थान सर्वोपरि होता है। क्योंकि वह संकल्पवान होता है। संकल्प का अर्थ व्यक्ति ने जिस कार्य के लिए चुना उसे दृढ़तापूर्वक करने के उपरान्त ही विश्राम ग्रहण किया। इसीलिए भगवान ने योगी को सबसे श्रेष्ठ बताया और कहा–

तपस्विभ्योऽधिको योगी।
ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।।
कर्मिश्यश्चाधिको योगी।
तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अर्थात् हे अर्जुन योग सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि योगी तपस्वियों, शास्त्रज्ञानियों, सकाम कर्म करने वालों से सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए तुम योगी ही बनो।

पुनः कहा–

योगीनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्त तमो मतः।।

हे अर्जुन योगियों में भी ऐसे योगी जो श्रद्धा के साथ मुझमें अपने चित्त को लगाकर अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है, ऐसा योगी मुझे अत्यधिक आत्मिक एवं मान्य होता है। भगवान ने अपने उपदेश में श्रद्धा को भी श्रेष्ठ बताया। गीता में ही भगवान ने बताया **''श्रद्धावान ही लभते ज्ञानम्''** अर्थात् श्रद्धावाला ही ज्ञान को प्राप्त करता है। यहाँ ज्ञान विचारणीय है। ज्ञान व्यक्ति के जीवन में सर्वोत्तम उपलब्धि है। क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु ज्ञान से ही जानी जा सकता है। **''न हि ज्ञानेन पवित्रं इह विद्यते''** तात्पर्य ज्ञान के समान पवित्र इस संसार में कुछ भी नहीं है। इसलिए ज्ञान जो किसी भी कार्य को संकल्पित रूप से करने की प्रेरणा देता है। सत्य असत्य का विवेक ही ज्ञान है।

अद्वैतवादी शंकराचार्य का एक सिद्धान्त पढ़ने को मिला जिसमें उन्होंने कहा–अज्ञान के कारण व्यक्ति में द्वैतभाव रहता है। तब सभी वस्तुएँ ''स्व'' से भिन्न दिखायी पड़ती हैं। किन्तु

जब सब वस्तुएँ आत्म रूप दिखाई पड़ने लगती हैं तब एक अणु भी 'स्व' से भिन्न नहीं रहता है। जिस प्रकार जाग जाने पर असत्य स्वप्न स्वतः समाप्त होकर सत्य का ज्ञान करा देता है। जैसे जब व्यक्ति स्वप्न में यह देखता है हाथी मुझे दौड़ा रहा है जबकि यह सत्य नहीं है। लेकिन व्यक्ति तब तक परेशान और भयभीत रहता है। जब तक कि डर से जगकर यथार्थ को जान नहीं लेता है। सत्य का ज्ञान हो जाने पर वह सहज हो जाता है।

योगी पूर्ण संकल्पवान होते हैं। उनका समस्त कार्य व्यापार मात्र सत्य संकल्पित ज्ञान से चलता है। इस भौतिक जगत का व्यक्ति भी संकल्पवान हो सकता है। हमारे सिद्धगुफा सवाई धाम में योगेश्वर महाप्रभुजी तथा सद्गुरुदेव भगवान के किये गये संकल्पों का अनुभव उनके उपदेशों के माध्यम से हर साधक अपने व्यावहारिक जीवन में महसूस करता है। इसी क्रम में सिद्धगुफा सवाई रहने का बराबर अवसर मिलता रहा। आश्रम में ही आदरणीय श्री पारसनाथ जी से मिलने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे महाप्रभु जी के संबंध में तो अनेक चमत्कार युक्त कहानियां सुनाया करते थे। इसी के साथ सद्गुरुदेव भगवान योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से संबंधित अनेकों संकल्प से संबंधित कथाएँ सुनाया करते रहते। जिसमें अपने किसी साधक शिष्य की रोग से रक्षा, आकस्मिक मृत्यु से रक्षा, किसी साधक के माध्यम से किसी भी संकल्पित व्यक्ति की पीड़ा को दूर करने के चमत्कारिक चरित्र रहते थे। हृदय परमानन्द से भर जाता है। सद्गुरुदेव भगवान का संकल्पित स्पर्श साधक के समाधि का कारण बन जाता था। आज भी साधक के संकल्प सद्गुरु कृपा से पूर्ण हो रहे हैं।

सही अर्थों में कहा जाये तो हमारी कामनाएँ शान्त ही नहीं हो रही हैं। हम मदान्ध और प्रतिस्पर्धी हो गये हैं। इसलिए हम लोगों के संकल्प खण्डित हो रहे हैं। किन्तु सद्गुरु की कृपा रूपी संकल्प व्यक्ति के जीवन में कभी नहीं खण्डित होता है। परम हंस योगानन्द से संबंधित संकल्प के संबंध में एक प्रेरक कथा का उल्लेख करना इस संबंध में युक्ति युक्त होगा। योगानन्द के बहनोई जो संतों, महात्माओं में विश्वास नहीं करते थे। इससे उनकी बहन रमा देवी सदैव परेशान रहती थीं। क्योंकि वह अध्यात्म प्रिय, सरल चित्त की महिला थीं। इस बात को योगानन्द परमहंस जी जान रहे थे। बहन की परेशानी से वे भलीभाँति परिचित थे। एक दिन वे अपनी बहन से बोले–बहन आज जीजा जी को दक्षिणेश्वर की यात्रा पर ले चलें। किन्तु उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होना चाहिए कि हम कहाँ जा रहे हैं? बहन रमा ने ऐसा ही किया। शान्त स्वभाव वाली रमा देवी ने पतिदेव से बोला आज एक यात्रा पर जाना है, जिसमें आपका चलना भी आवश्यक है। बहुत समझाने पर वे तैयार हो गये तथा अपने शर्त के अनुसार यात्रा शुरू हुआ। लोग दक्षिणेश्वर के काली माँ के मंदिर में आ गये। यहाँ आने पर

उनको मालूम हुआ कि मेरी यात्रा का पड़ाव यही माँ काली का मंदिर ही है। यह समझने में उनको देरी भी नहीं लगी कि यह सब मेरे लिए किया गया है। संकल्प परमहंस योगानन्द का था। उन्होंने देखा कि–जीजाजी मंदिर के पीछे बेल वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। यद्यपि यहाँ बैठे हुए (जीजाजी को) देखकर योगानन्द को उनके विचारों में कुछ परिवर्तन जैसा लग रहा था। किन्तु अपने भोगोवाद विचारों के प्रति वे कठोर दिख रहे थे। उसका मुख्य कारण था कि वे लोग असमय में मंदिर में आये थे। भोजन आदि भी नहीं मिल सकता है। बहनोई बार–बार आकर योगानन्द को देख लेते थे। जो बहुत देर से एक आसन से बैठे हुए ध्यान में मग्न थे। बार–बार के आने पर भी वही स्थिति बनी रहती थी। पुनः बड़े गुस्से में आकर बोले–अरे मूर्ख (योगानन्द जी की ओर) घंटे पर घंटे बीत गये तुम पलथी मारे आँख–चढ़ाये हुए अभी तक बैठे ही हो। मेरा भोजन कहाँ है? उसकी क्या व्यवस्था तुमने की है। मंदिर के कपाट बन्द हो गये हैं। इसलिए भोजन की व्यवस्था हो पाना बड़ा कठिन है। किन्तु वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि योगी का संकल्प काम कर रहा है। समय पर माँ सब कुछ दे देगी। देवी के ध्यान में मग्न तथा हर्षोन्माद के साथ कहा–बहनोईजी माँ भोजन की व्यवस्था कर देगी। आप परेशान न हों। रोष में भरकर उन्होंने (जीजा) कहा–अच्छा यह भी देख लेता हूँ। इतने में मंदिर के पुजारी जो योगानन्द को आते ही देख लिया था, कि यह अवश्य ही परिपूर्ण महात्मा है। इनके लिए भोजन की व्यवस्था कर देनी चाहिए। पुजारी मंदिर के कपाट बंद हो जाने पर आकर देखा तो योगानन्द जी सहज भाव में आ गये थे। उन्होंने कहा–स्वामी जी जब आप मंदिर में प्रवेश किये। उसी समय आप को देखकर मेरे मन में भोजन व्यवस्था की बात आ गयी थी। भोजन के समय मैंने आकर देखा तो आप उस समय माँ की अनुभूतियों में डूबे हुए थे। इसलिए कहना उचित नहीं लगा। अब जबकि कपाट बंद हो गया तो सबका भोजन हो गया है। आपसे आग्रह है कि आप अपने ईष्टों के साथ भोजन कर लें। इससे मुझे परम शान्ति मिलेगी मुस्कराते हुए योगानन्द जी ने कहा–जीजाजी पुजारी जी की बात सुन लिए हैं। बहनोई जी के मन पर यह बात विशेष प्रभाव डाल दिया। उनमें (बहनोई) भी योगानन्द के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। वे माता की कृपा का अनुभव करने लगे। सहज भाव से पुजारी के साथ जाकर क्षुधा–पिपासा शान्त की।

यह भौतिकवादी मनुष्य के लिए भौतिक पदार्थ (भोजन) के लिए किया गया स्वस्फूर्त संकल्प रहा होगा। हम भौतिकवादी जीव भी इसी प्रकार भौतिक पदार्थों की कल्पना की पूर्ति के लिए कहीं भी किसी से भी प्रार्थना करते हैं। किन्तु आध्यात्म जो पूर्ण रूप से जीवन को परितृप्त कर देने वाली है। उसके बारे में नहीं सोचते हैं। इसलिए भगवान ने गीता में कहा है

कि–

यदा हिनेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्प सन्यासी योगारुढ़ स्तदोच्यते।।

अर्थात् जो साधक योगमार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं। उनके मन में इन्द्रियों के भोगों और न तो कर्मों में ही कोई आसक्ति नहीं दिखायी देती है। ऐसे सत्य संकल्पी साधक गुरुकृपा से क्रमशः आध्यात्म मार्ग पर धीरे–धीरे बढ़ते चले जाते हैं। आध्यात्म मार्ग ही नहीं बल्कि भौतिक जीवन में भी वे क्रमशः संसार जगत में उन्नति की ओर अग्रसर होते जाते हैं। इसलिए साधक को सदैव अपने मन पर नियंत्रण करते हुए हमें भी इसी प्रकार संकल्पवान होना चाहिए। जिससे व्यक्ति का आध्यालिक मार्ग सदैव प्रशस्त होता रहे।

आश्रम समाचार

आचार्य दासलाल जी महाराज के आगामी कार्यक्रम

4 से 6 दिसम्बर– श्री चन्दन सिंह बाबू
आवास विकास कालोनी, बस स्टैण्ड के सामने
दतिया (म.प्र.)

7, 8 व 9 दिसम्बर– श्री प्रदीप द्विवेदी
लक्ष्मी परिसर कुंज विहार, गोला का मंदिर,
ग्वालियर (म.प्र.)

28 दिसम्बर से 1 जनवरी 2018 तक–
श्री योग आश्रम
भृसिंह कालोनी, गंगापुर सिटी (राजस्थान)

1 जनवरी को दोपहर 12 बजे से भण्डारा

सिद्ध-योगियों का पावन-जीवन पथ-प्रदीप है

(श्री अलगूराय जी शास्त्री)

वैदिक संस्कृति विश्व के मानव-इतिहास में सर्व प्राचीन है। व्यक्तिगत मानव-जीवन के लिए जैसे एक मनुष्य का शरीर मन, चरित्र, स्वभाव, आचरण एक मूल्य रखता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र और एक जाति के सामूहिक जीवन के साथ उसकी संस्कृति का सम्बन्ध है।

इस दृष्टि से भारत की आर्य जाति का जो सांस्कृतिक इतिहास है, वह गौरवपूर्ण है। मनुष्य-जीवन का ऐहिक मूल क्या हो, इस पर जो प्रकाश इस संस्कृति में देखा जाता है, वह अपूर्व सौन्दर्यमय है। सोलह संस्कारों से निखर कर उस जीवन को समुज्जवल होना पड़ता है। गर्भाधान से लेकर मरणपर्यन्त किस जाति ने कभी कल्पना की कि एक मनुष्य को संस्कृत होना पड़ेगा-''**वाचं ते शुन्धामि**'' आदि के वचन से आरंभ कर '**चरित्राणि च ते शुन्धामि**' का वचन हमें बताता है कि मन, वाणी, काया चरित्र सबको शुद्ध पवित्र बनाना होगा। इस प्रकार का कायिक, वाचिक, चारित्रिक सुदृढ़ जीवन ''**स्थिरैरंगै षुष्टुवाँ**'' **देवहितः यदायुः**'' समस्त सुदृढ़ अंगों सहित आयु देव-कार्य के लिए हो-अपने व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद के लिए न हो। जीवन व्यक्तिगत सुन्दर, दृढ़, पवित्र हो, परन्तु वह चरितार्थ हो लोक-कल्याण में। इस प्रकार उत्कृष्ट व्यष्टि में परमोत्कृष्ट समष्टि का उदय--श्रेष्ठ आर्यजनों में से उदय हो, ऐसे समाज की कल्पना हमारे सामने उपस्थित करता है, समाज का प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ हो, फलतः समाज परम श्रेष्ठ हो, यह झांकी है।

व्यक्ति और समाज का यह सम्बन्ध इस संस्कृति द्वारा हमें प्राप्त होता है। समाज में ''**न अस्माकं ज्येष्ठासो न कनिष्ठासः**'' का चित्र हमें उसके पश्चात् मिलता है-इस मानव-समाज में, विश्व भर में न कोई छोटा है न बड़ा हम सब मनुष्य भाई-बहिन हैं, परस्पर समान हैं। हम सबका पिता और माता अदिति है। इस प्रकार ऊँच-नीच, जाति-पांति के भेदों के लिए, रंग-रूप की पृथकता के लिए इस संस्कृति में स्थान नहीं। इसमें देश और जाति की ऊँचता-नीचता और भेदों को भी अवकाश नहीं। विश्व-बन्धुत्व का शाश्वत सन्देश वैदिक संस्कृति में ही अमन्द ज्योति से प्राप्त होता है। मानव में समानता का विमल सन्देश यहीं

निर्भ्रान्त रूप में दिखाई पड़ता है। ''माँ प्रति माँ प्रति इति समस्ते न तत्साम्'' यहीं गाया गया है–मेरे लिए भी, मेरे लिए भी यह जहाँ सब कह सकें वहीं साम्यावस्था है, यही अभिप्रेत है, यह नहीं कि कुछ के लिए सुविधा कुछ के लिए असुविधा कुछ सम्मानित कुछ असम्मानित। मानव मात्र में समानता को श्रेयस्कर बनाकर इस संस्कृति ने कलह का द्वार बन्द किया है।

''सहृदयं संमनस्यं, अविद्वेषं कृणिमो व:'' अन्योनां अभि–हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या''–हे मनुष्यो! मैंने तुम्हें समान मन वाला, समान हृदय वाला बनाया, तुम एक दूसरे के प्रति विद्वेष मत रखो, एक की ओर दूसरे को लपकना और बढ़ना चाहिए जैसे सद्यः जात लवारे की ओर नव–प्रसूता जननी गौ बढ़ती है।

विश्व के मानव को यह उपदेश देकर वैदिक संस्कृति ने विश्व–शान्ति का जो चित्र उपस्थित किया है वह अप्रतिम है। इस संस्कृति से जीवन के सामंजस्य का उपदेश मिलता है। चारवाक् मत ऐहिक जीवन को सुखमय बनाकर इतिश्री कर देता है। बौद्ध, जैन एवं इसी प्रकार के वैराग्य प्रधान विचार विश्व की नश्वरता को सामने रखकर उसके मिथ्यात्व को प्रमुखता देकर, ऐहिक जीवन को नीरस बनाते हैं। वैदिक संस्कृति अविद्या के द्वारा–विविध वैज्ञानिक सांसारिक विद्याओं के द्वारा जीवनयापन को ऐश्वर्यमय अभ्युदय बनाकर अन्त में विद्या द्वारा–ब्रह्म विद्या द्वारा, आत्म–ज्ञान द्वारा कैवल्य प्राप्ति का मार्ग बताती है। **''शैशवे अभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणां वार्धके मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते ननुत्यजाम्''** का आदर्श सामने रखती है। बचपन में विद्या–जवानी में विषयादि सेवन से प्रजोत्पादन तीसरी अवस्था में साधना और अन्त में योग द्वारा देह–त्याग से मोक्ष'' अर्थात् **'यस्तद्वेदोमयं सह'** लोक–परलोक दोनों की साधना 'घर कीन्हें घर जात है, घर छोड़े घर जाय तुलसी घर वन बीच ही राम प्रेम पुर छाय'' घर छोड़कर न घर रखकर किन्तु दोनों के सामंजस्य से परम फल मिलता है। **''यतोऽभ्युदय निः श्रेयस सिद्धि''** जिससे सांसारिक अभ्युदय प्राप्त हो और अन्त में मोक्ष मिले ऐसे ही सामंजस्यमय जीवन की झांकी वैदिक संस्कृति की देन है। फलतः इसके इतिहास में वीर–वीराङ्गनाओं की कहानियाँ भरी पड़ी हैं। वायु में उड़ने वाले वायुयानों की कहानियाँ भरी पड़ी हैं। शरीर को रोगमुक्त करने वाले शास्त्रों के निर्माण की विधियाँ, युद्धों के इतिहास भरे पड़े हैं। साथ ही सिद्धायोगियों का पावन–जीवन मानव के लिए पथ–प्रदीप बना पड़ा है।

हम इस संस्कृति के असंख्यात स्वरूप का अध्ययन करें, उसका गुण गायें और जीवन को लोक–सेवा में लगायें।

साधना का मूल्य

(श्री पं. विष्णुदेव जी)

वाल्मीकि मुनि का वह आश्रम था। ये वे ही आदि कवि थे, जिन्होंने 'राम–राम' का अखण्ड रटन किया था। भारत के कोने–कोने में उन मुनिवर की ख्याति हो गई थी और उनके गुरुकुल में पढ़ने वाले विद्यार्थी और पढ़ाने वाले शिक्षकों की भीड़ लगी रहती थी। वहाँ रहने वाले ब्रह्मचारी अग्नि की सेवा करते थे। योगिजन योग की क्रियाएँ करते थे। तपस्वीजन तप करके सिद्धि की अपेक्षा रखते थे और मुनिजन नित्य ध्यान के लिए एकान्त–सेवन करते थे। वहाँ का तपोवन और आश्रम मुनि गुरुकुल का ही एक भाग था।

गङ्गा की निर्मल वारि–धारा सतत् आश्रम की पवित्रता वृद्धि कर रही थी। वन के पवित्र वृक्ष, वनस्पति और औषधि–लतायें भूमि के सुहाग थे। पक्षियों का कलरव विद्यार्थियों के वेद–घोष का पूरक था।

इस गुरुकुल में अनेक अतिथि आते रहते थे। एक सुमङ्गल प्रभात में मुनि उत्तङ्क आश्रम में पधारे। वे तपस्वी मुनि तो थे ही, विशिष्ट कोटि के विद्वान भी थे। योग की साधना में अग्रगामी थे और मनोनिग्रह में भी सिद्ध थे। वे अपने को सभी बातों में पूर्ण मानते थे। उनको न किसी अप्राप्त फल की प्राप्ति करनी थी और न कोई अज्ञान था, जिसकी निवृत्ति करनी हो। वे अपनी मान्यता में मस्त थे और एक प्रवासी की तरह निर्द्वन्द घूमते थे। बाल्मीकि के आश्रम में जब आप पधारे, तब यहाँ भी आपकी मान्यता तो आपके साथ ही आयी थी।

बाल्मीकि मुनि ने उनका स्वागत किया। आश्रम के विद्यारसिकों ने उनके आगमन पर बधाई मनाई। साधकों और योगिजनों ने भी उनकी सराहना की। सभी ने उनका नाम सुन रखा था, आज उनके दर्शन से गुरुकुल का प्रत्येक निवासी आनन्द मना रहा था। एक दिन, दो दिन, तीन दिन मुनि उत्तङ्क से आश्रमवासी मिलते रहे और वे भी आश्रमवासियों से मिलने के लिए कुटी–कुटी घूमते रहे।

उस गुरुकुल में दो–तीन दिन तो अतिथि का सत्कार होता था, परन्तु किसी को अधिक काल रहना हो, तो उसको अपनी पर्णकुटी बनानी पड़ती थी यह गुरुकुल का नियम था। मुनि उत्तङ्क इस नियम को जानते थे, परन्तु वे मस्त थे। आश्रम के निवासियों ने उनका प्रेम से स्वागत किया। वे एक दिन एक की झोपड़ी में रहे, तो दूसरे दिन दूसरे की। वे अपने को

'अनिकेत' मानते थे और फिर निकेत का निर्माण किया भी क्यों जाये जबकि यों ही मस्ती का आस्वाद मिलता हो।

मुनि उत्तङ्क के पास विद्या थी और गुरुकुल के विद्यार्थी उनसे लाभ उठाते थे। वे साधक थे और आश्रम के साधक उनकी साधना का अनुभव सुनते थे। सिद्ध और योगिजनों के भी वे मार्गदर्शक बने थे और उनके पास जाकर भी वे अपनी मस्ती का आस्वाद वाणी द्वारा प्रकट किया करते थे, वाणी पर उनका अच्छा प्रभुत्व था। इसीलिए विद्यार्थियों की मधुकरी में से उन्हें थोड़ा हिस्सा मिल जाता था। साधकों की ओर से भी सेवा मिलती थी और सिद्ध योगियों से कुछ कन्द मूल, फल मिल जाते थे। सोने के लिए तो कोई भी स्थान उनके लिए अपना था। आश्रम में रहते हुए भी वे आश्रम के नहीं थे और उन पर आश्रम के नियम बन्धनकारी नहीं थे–ऐसा वे मानते थे।

वाल्मीकि के आश्रम का प्रत्येक निवासी स्वाश्रयी था– चाहे वह सिद्ध हो या साधक, तपस्वी हो या मुनि, गुरु हो या विद्यार्थी। मुनिवर वाल्मीकि स्वयं भी एक छोटी पर्णकुटी में रहते थे। उनके नित्य नियम में था–दर्भसमिधा लाना, स्नान–संध्या करके जल का घड़ा लाना और अग्निहोत्र करके मधुकरी लाना। वे विद्यार्थियों के, गुरुओं के, तपस्वियों के और योगियों के–सभी के गुरु थे, इसीलिए वे आश्रम में अधिक लगे रहते थे।

उत्तङ्क मुनि के स्वभाव की यह एक विचित्रता थी कि वे सबके कार्य–व्यवहार की समालोचना करते थे, गुण–दोष की चिकित्सा करते थे और कभी किसी व्यक्ति–विशेष की स्तुति– निन्दा भी कर लेते थे। उनके मन में मुनिवर वाल्मीकि के प्रति बड़ा आदर था और वे उनका सत्संग करने के लिए ही आये थे। मुनिवर का उन्होंने सत्संग किया या नहीं, यह तो वे ही जानें, परन्तु उनके सत्संग का लाभ मुनिवर को अवश्य मिला, ऐसा वे मानते थे और विद्यार्थियों के समक्ष कहते भी थे। सिद्ध–मुनियों के पास वे मुनिवर की स्तुति–निन्दा भी कर लेते थे।

मुनिवर वाल्मीकि उनके स्वभाव से परिचित थे, परन्तु उनके स्वभाव को बदला कैसे जाय? जो शिष्य हो शरण में आये और अपना होकर रहे, उसके स्वभाव का सुधार तो हो सकता है, परन्तु ये तो 'उत्तंक' मुनि ठहरे जो अपने को सभी बातों में पूर्ण मानते थे। वे भला, मुनिवर के शिष्य बनने की भावना क्यों करते।

उत्तंक मुनि उस आश्रम में बहुत काल तक रहे, परन्तु वे रहे एक अतिथि के रूप में। आश्रम के नियमों का वे पालन नहीं करते थे। वहां सभी को कर्त्तव्य–कर्म करने पड़ते थे। स्वतन्त्रता अवश्य थी, परन्तु मर्यादा का पालन आवश्यक था। सब लोग समझ कर परस्पर

सहकार से आश्रम के कार्य भी कर लेते थे, परन्तु उत्तंक मुनि स्वयं विचक्षण थे। आश्रम के स्वाश्रयी वातावरण से वे परिचित हो गये थे। गुरुकुल के ब्रह्मचारी और आश्रम के साधक अपना कार्य स्वयं कर लें'' इससे उनको जीवन की शिक्षा मिलती है, अतएव इसका वे आदर करते थे। सिद्ध लोग और योगिजन भी स्वयं अपना कार्य करें, इससे भी उन्हें आपत्ति न थी, परन्तु स्वयं वाल्मीकि मुनि कार्य में रत रहें, इस बात से वे नाराज थे। 'जो आत्माराम और कृतकृत्य हैं, उनको किसी कार्य का कोई बन्धन नहीं होता–ऐसी उनकी समझ थी। धीरे–धीरे उनके मन में तर्क, संशय घुस ही गये और मुनिवर वाल्मीकि के कार्यों में भी उनको अज्ञान की गन्ध आने लगी। एक समय बात ही बात में जब वाल्मीकि मुनि ने कर्म करने पर जोर दिया और उत्तंक का ध्यान आश्रम के नियमों की ओर आकर्षित किया तब तो उनका तर्क और भी दृढ़ हो गया।

आश्रम से उनका मन उठ गया। एक दिन वे कुछ जल्दी ही उठ गये और स्नान–संध्या करके गंगा के किनारे–किनारे चल दिये। आश्रम की भूमि पर कई वर्ष पहले आये थे, वर्षों वहां रहे और आज चले गये। आश्रम के निवासियों में उन्होंने आदर जमाया, परन्तु आश्रम से वे कुछ पा नहीं सके। उनका स्वभाव ही विचित्र था।

गंगा नदी नीचे की ओर बहती थी, मुनिवर ऊपर की ओर बढ़ रहे थे। संसार से वे ऊब उठे थे और एकान्त खोज रहे थे। आश्रम के ब्रह्मचारी, व्रती, तपस्वी, सिद्ध, योगी आदि भी उनकी दृष्टि में अज्ञानी थे। ज्ञान की भूमिका में आरूढ़ कोई महात्मा उनको मिले ही नहीं। अनेक हिमशिखरों को लांघकर वे आगे बढ़ गये। सूर्य ने भी अपना प्रवास पूरा करना चाहा। वे एक शिखर पर ठहर गये और एक छोटी गुफा ने उनका अपनी ऊष्मा से स्वागत किया। नीरव, निर्मल, निर्जन वह प्रदेश था। मुनि ने वहीं अपना आसन लगाया। प्रातः उठते ही स्नान–संध्या और फलाहार आदि करके समाधि में लीन हो गये।

वे सिद्ध मुनि थे और सहज समाधि में मग्न रहते थे, इसी को वे तप मानते थे। उनकी वह तपश्चर्या वर्षों तक अबाध चलती रही। वे जब कभी समाधि से उठते थे, तब स्नान, संध्या, फलहार आदि कर लेते थे। शिखर पर थोड़ा घूम लेते थे और फिर समाधि में निमग्न हो जाते थे। स्वर्ग के राजा इन्द्र को उनके तप से कोई ईर्ष्या पैदा नहीं हुई और न उन्होंने कोई अप्सरा ही भेजी! हाँ, आदि प्रजापति ब्रह्मा को इन मुनि पर अवश्य दया आई और उन्होंने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की। ब्रह्मा का मनोभाव समझकर विष्णु भगवान् गरुड़ पर सवार होकर मुनि के पास जा पहुँचे।

मुनिवर तो समाधि में लीन थे, भगवान् ने उनके ललाट पर अपना शंख रख दिया।

मुनिवर की समाधि छूटी आँख खुलते ही चतुर्भुज भगवान् को सामने देखकर मुनि ने प्रणाम किया। भगवान ने उनके मस्तक पर वरदहस्त रखा और कहा—

'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, मुनिवर! वर मांगो।' वे बड़े विलक्षण स्वभाव के मुनि थे। उन्होंने उत्तर दिया—भगवन्! आप प्रसन्न हैं, यही बस है। मेरा तप भी तो कम नहीं है' इतने वर्ष तप कर लेने पर भी उनकी तर्क–तुलना में कोई कमी आई नहीं थी। उनकी वैसी ही मनोवृत्ति थी प्रकृति के साथ ही उनकी विलक्षणता जम गई थी। भगवान ने मन्दस्मित किया। वे तो दयालु हैं और दया करके ही आये थे। उन्होंने कहा—

'मुनिवर! मैं तो वरदान देने आया हूँ। आप चाहें सो मांग लें।' उत्तङ्क ने सतर्क होकर उत्तर दिया—'भगवन्! आप तो सर्वज्ञ हैं, इसलिए मांगना क्या है? तप करते–करते मैंने जितना काल व्यतीत किया, उसी के हिसाब से आप वरदान भी दे दीजिए।' भगवान् मुस्करा कर शान्ति से पूछने लगे—'मुनि! गणना से जो फल मिलेगा, उसको आप स्वीकार करेंगे न?' तर्कजाल में फँसे रहने के कारण भगवान के वचन का रहस्य उत्तङ्क समझ नहीं सके। उन्होंने कहा—'गणना से जो फल मिलेगा, वह मुझे स्वीकार होगा।' भगवान् मुनिवर की परीक्षा लेते हुए पूछने लगे—

'उत्तङ्क मुनि! आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देंगे न?'

'तैयार हूँ भगवन्! आप पूछिये।'

'अच्छा, इस शिखर पर आप कितने वर्षों से तप करते हैं?'

'काल की तो मैंने कोई गणना नहीं की, भगवन्!'

'अच्छी बात है। इस हिमालय के शिखर ने आपकी काया को अगणित काल से धारण कर रखा है, यह ठीक है न?

'हाँ भगवन्! इस शिखर की गुफा में मैं अगणित काल से रह रहा हूँ।

मुनि भगवन् के प्रश्न के रहस्य को नहीं समझ सके। उन्होंने सीधा ही उत्तर दिया। भगवान उनकी बुद्धि के अन्तराय को—अभिमान को दूर करने का यत्न करते थे। उन्होंने फिर पूछा—

'तो मुनिवर! इस हिमालय की प्रकृति ने यहाँ के निर्मल जल ने, मीठे स्वादिष्ट फलों ने, वृक्ष–वनस्पतियों ने आपकी कुछ सेवा की है?'

'मेरी सेवा, भगवन्?' ..... और मुनि की विवेक–दृष्टि खुल गई। वे देखने लगे। अपने विशाल भूतकाल पर दृष्टि फैलाकर।' प्रकृति सदा उनकी सेवा करती थी, जल, फल, कन्द, मूल ही शरीर का आधार था। मुनिवर वाल्मीकि के आश्रम की स्मृति भी उनको आई।

एक–एक आश्रमवासी उनकी सेवा करता था। वे भूतकाल की स्मृति में डूब गये। इसी बीच में भगवान् एक प्रश्न और कर बैठे–

'सुनिये, मुनिवर! आपको याद है? इस धरती–माता ने आपके आहार–विहार और व्यवहार के कितने कार्य किये हैं?'

'हाँ, भगवन्, हाँ!' मुनि की दृष्टि खुल गई थी। उनका गर्व गल चुका था। धरती माता और प्रकृतिमाता ने जितने उपकार किये थे, उनकी तुलना में उनके व्रत, तप किसी गिनती में न थे। मुनि का तर्कजाल छिन्न–विच्छिन्न हो गया। उनका गणना–शास्त्र निरर्थक हो गया। वे चुप हो गये। भगवान् तो परीक्षा ही ले रहे थे। वे धीर–गम्भीर होकर बोले–'सुनिये, मुनिवर! मैं वरदान देने आया हूँ और आपकी इच्छा के अनुकूल गणना करके ही वरदान दूँगा। इस धरती माता को आपने अनन्त काल तक काया उठाने का कष्ट दिया है, अतः अब अनन्त काल तक इस धरती को आप अपने मस्तक पर उठाकर रखिये। इस प्रकृतिमाता के उपकार भी आप पर अनन्त हैं। आपके शरीर के रक्त का एक–एक बूँद इसके कणों से बना है। अब आप अपने रक्त की एक–एक बूँद उसको दे दें, ऐसा करके ही आप उसके ऋण से उऋण हो सकेंगे।'

भगवान् का यह वरदान था, जो उत्तङ्क मुनि ने माँगा था। भगवान का गणनाशास्त्र इतना विशाल होगा, किसी संसारी मनुष्य को इसका ध्यान थोड़े ही हो सकता है? उत्तङ्क मुनि दिग्विमूढ़ बन गये थे, जब विष्णु भगवान् उनके सामने आये थे, तब उन्होंने अपने मन से थोड़ी–सी यह कल्पना कर ली थी कि 'मैं साधारण व्रती, तपस्वी या भक्त जैसा भोला और अज्ञानी नहीं हूँ, इस बात को भगवान् भी जान लें और उन पर भी मेरी विशेषता प्रकट हो जाये'–बस, इसी मनगढ़ंत कल्पना पर उन्होंने भगवान के आगे अपना गणनाशास्त्र रखा था। भगवान तो भक्त के वश हैं। भक्त ने जो मांगा वही देने को वे तैयार रहते हैं।

उत्तङ्क मुनि की सामान्य ऋद्धि–सिद्धियों में आसक्ति न थी, इसीलिए उन्होंने भगवान को गणना के अनुसार वरदान देने की प्रार्थना की। मुनि के अनन्त काल की साधना का मूल्य भगवान दे रहे थे। 'जिस पृथ्वी ने आपकी काया के भार को अनन्त काल तक उठाया, उस पृथ्वी को अब अपने सिर पर अनन्त काल तक उठा लें।'

कैसे वरदान था? उत्तङ्क मुनि की आँखें खुल गई थीं। उनकी मस्ती चूर–चूर हो रही थी। गर्व, तर्कजाल, गणनाशास्त्र–सब लुप्त हो चुके थे। क्या कोई भी पृथ्वी के भार को अपने सिर पर उठायेगा और वह भी वरदान के रूप में?

मुनि ने मस्तक ऊपर उठाया और उनको भगवान की अपार करुणा के दर्शन हुए। फिर

उन्होंने अपनी ओर देखा और अपने असंख्य अपराधों को वे देखने लगे। उनकी वाणी रुक गई। आँखों से प्रायश्चित के रूप में आंसुओं की धारा बहने लगी। भगवान के चरणों पर मुनि ने अपना मस्तक टेक दिया। उन्होंने भगवान की शरण ग्रहण की। उनके हृदय की भावना शुद्ध हो गई थी।

भगवान् तो अपार करुणा के सागर हैं। भक्त पर अनुग्रह करने के लिए ही वे पधारते हैं। वे पापियों के पाप, घमंडियों के घमंड और गर्वीजनों के गर्व को हर लेते हैं। उत्तङ्क मुनि पर भगवान की कृपा बरस रही थी। अब वरदान लेने–देने का कोई सवाल ही न था। गर्व का चूर–चूर हो जाना–यही 'साधना का मूल्य' था और उत्तङ्क मुनि को वह मिल गया था। अब वे सच्चे स्वरूप से पूर्ण, सर्वतंत्र स्वतन्त्र भगवान के भक्त बन गये थे।

माया का आवरण हटा दे

(श्री बालकृष्ण जी गर्ग)

मैं अनाम हूँ, तू है नामी।
मैं हूँ सेवक, तू है स्वामी।
दीन–दुखी मैं, दीनबंधु तू।
दयापात्र मैं, दयासिन्धु तू।
भीतिग्रस्त मैं, तू भयहारी।
तिमिरयुक्त मैं, तू तिमिरारी।।
ज्ञानरूप तू, मैं अज्ञानी।
लहररूप मैं, तू है पानी।।
याचक हूँ मैं, तू है दाता।
ज्ञानदृष्टि दे, हे जगत्राता।।
माया का आवरण हटा दे।
'मैं–तू' का यह भेद मिटा दे।।

मेरे प्रभुजी

मेरे प्रभुजी संवाई में बुला लोगे तो क्या होगा
मेरे गुरुदेव शरण अपनी लगा लोगे तो क्या होगा

संवाई आके प्रभु जी ने योगलीला दिखाई थी–2
योग गंगा जगत में फिर बहा दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी..........

सेवा कर चन्द्र प्रभु जी ने योग अमृत को पाया है–2
योग अमृत जगत को फिर पिला दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

उजाला योग का देकर तिमिर जग का हटाया है–2
योग ज्योति हमें प्रभु जी दिखा दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

यहाँ गम दूर हो जाते मुरादें पूरी होती हैं–2
नजर रहमत की जो प्रभुजी हमें दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

संवाई धाम में दिन रात शक्ति संचार होता है–2
दीवाना अपने चरणों का बना दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

भक्ति का दान दो प्रभु जी अर्ज हमने लगाई है–2
विजय को चरणों की सेवा प्रभु दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

हमको भी बुला लो धाम संवाई
दर्शन दो प्रभु राम लाल साईं

–विजय शर्मा
सहारनपुर

मेरे श्री गुरुदेव

—**कृष्णचन्द्र शर्मा**, सेवानिवृत्त बैंक मैनेजर, गाँव बडाहीं—बलदूड़ा

शारीरिक रोग एवं मानसिक पीड़ायें, चिन्तायें भी आत्मकल्याण के लिए मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं, इसका मैंने स्वयं अनुभव किया है। घटनाएँ वर्ष 1962–68 की हैं।

मेरा जीवन सन् 1962 से लेकर सितम्बर 1967 तक ऐसे ही कठिन मानसिक रोग से ग्रसित था। मैं हमेशा बहुत परेशान सा रहा करता था। सोते, जागते मानसिक चिन्तायें मुझे सताएँ जा रही थीं तब मेरे सभी प्रयत्न असफल हो रहे थे। परिस्थितियाँ भी प्रतिकूल थीं कि मैं स्वयं अनुभव करता था कि न जाने मैं कौन सा कठोर अपराध कर बैठूँ। मैंने अपनी जन्म–पत्री एक जानेमाने ज्योतिषी को दिखलाई, उन्होंने दावे के रूप में मुझे कहा कि आपको कुछ दिनों का कठोर कारावास होने वाला है, यह जानकर मैं दु:ख व चिन्ता से पागल सा बन गया था, मेरा शरीर मानसिक चिन्ताओं से दुर्बल हो गया था।

मेरे तत्कालीन एक पड़ोसी श्री लालचन्द्रजी जो वनविभाग में कर्मचारी थे, श्री पूज्य महाराज (योग योगेश्वर प्रभु चन्द्रमोहन जी महाराज) जी की चरण–शरण प्राप्त कर चुके थे। परेशानी से युक्त मेरे चेहरे को देखकर उन्होंने मेरी शोकनिवृत्ति के लिए सुझाव दिया कि मैं परम पूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जी की सेवा में पत्र प्रेषित करूँ।

मैंने भाई जी के आदेशानुसार अनमने मन से श्री महाराजजी की सेवा में संवाई के पते पर एक पत्र भेजा, जिसका उत्तर मुझे श्री महाराज जी ने जम्मू से भेजा जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—'लल्ला आप कोई चिंता न करो! आपको 12 वर्ष का कोई भी कारावास नहीं होगा। हम 16 अक्तूबर से 27 अक्तूबर 1967 तक चण्डीगढ़ आ रहे हैं इसी समय में हमारे पास चले आओ।'' मन को कुछ शान्ति प्राप्त हुई तथा मैं सपत्नीक 16 अक्तूबर 1967 को चण्डीगढ़ में बताये गये स्थान पर पहुँच गया मन में विश्वास तथा शंकायें दोनों ही बनी हुई थीं। मैं चाहता था कि मैं श्री महाराज जी से अकेले में मिलकर अपना रोना दिल–खोलकर रोऊँ, परन्तु निवेदन करने का साहस नहीं हो रहा था। श्री महाराज जी मेरे मन–भावों को जान गये थे। महाराज जी के साथ संवाई आश्रम से श्री ठाकुर पातीराम जी भी आये थे। उनसे मैंने अपना दु:ख सुनाया तथा उन्होंने श्री महाराज जी से एकान्त में मिलने की प्रार्थना कर दी। श्री महाराज जी ने उसी समय स्वीकृति दे दी। बस फिर क्या था मैं श्री महाराज जी के चरणकमलों को पकड़ कर फूट–फूट कर रो पड़ा, श्री महाराज जी ने अपने कर कमलों से मेरे आँसू पोंछे तथा मुझे निर्भय बना दिया। जिन मानसिक चिन्ताओं से मैं लगातार 5 साल से संतप्त हो रहा था श्री महाराज जी ने उसका निवारण कुछ मिनटों में ही कर दिया तथा श्री प्रभु

जी ने मुझे अपने चरण कमलों का आश्रय भी दे दिया। उसके बाद दैनिक जीवन में श्री महाराज जी की अनवरत कृपायें प्राप्त हो रही हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

1. साँप से बच्चे की रक्षा–यह घटना नवम्बर 1967 की है। मेरे घर वाले खलिहान में धान की गहाई कर रहे थे। पास ही मेरा लड़का जिसकी आयु उस समय साढ़े तीन वर्ष की थी सुलाया हुआ था। अचानक ही एक काला भयानक साँप कहीं बिल में से निकल कर बच्चे के ऊपर चढ़ गया जिससे बच्चा उठ बैठा तथा साँप उसके गले से लिपट गया। बच्चा भयभीत होकर अपनी माँ को पुकारने लगा। ज्यों ही उसकी माँ ने उसकी ओर देखा तो उसके मुँह से चीख निकल गई। किंकर्तव्य विमूढ़ सी अभी वह सोच भी नहीं पाई थी कि क्या किया जाये कि इतने में खुली आँखों श्री गुरुदेव भगवान जी के दर्शन हुए जो बच्चे के पीछे खड़े थे। सांप बच्चे के गले से उतर कर चला गया। यह सभी क्षण–भर में हो गया।

धन्य हो मेरे पूज्य गुरुदेव जी जिन्होंने बच्चे की इस प्रकार रक्षा की। **'सर्व भूतादि वासम्'** इस उक्ति के अनुसार हमारे गुरुदेव भगवान समय–समय पर अपने बच्चों की रक्षा करते रहते हैं।

2. शिक्षा प्राप्ति में श्री गुरुदेव जी की प्रेरणा–श्री महाराज जी के चरण–कमलों का आश्रय प्राप्त करने के पूर्व ही मैंने नौकरी के साथ–साथ संध्याकालीन कालेज में भी प्रवेश लिया था, परन्तु मानसिक चिन्ताओं के कारण पढ़ाई में मेरा मन नहीं लगता था, मैंने इसी विषय में श्री महाराज जी की सेवा में एक पत्र भेजा कि महाराज जी मैं आगे नहीं पढ़ना चाहता, परन्तु श्री महाराज जी पढ़ाई जारी रखने के लिए मुझे प्रेरणा देते थे। परिणामस्वरूप मैं 1970 में उन करुणामय के चरण कमलों की अपार कृपा से बी.ए. पास कर चुका हूँ।

3. कर कमल स्पर्श से रोग निवृत्ति–जुलाई–अगस्त सन् 1969 में मेरी पीठ में अचानक ही अतीव दर्द होने लगा जो कभी बन्द हो जाता था तथा कभी पुनः शुरू हो जाया करता था। मैंने इस दर्द का काफी इलाज कराया परन्तु कोई लाभ न हुआ। मैंने इसके विषय में श्री महाराज जी से पत्र में निवेदन किया। श्री महाराज जी ने "जीवन तत्व साधन" करने का आदेश दिया। आलस्यवश अथवा समयाभाव से मैं इस साधन को भी न कर सका। अक्तूबर सन् 1970 में मैं श्री महाराज जी के चरणारविन्दों में चण्डीगढ़ गया। वहाँ पुनः श्री महाराज जी से अपने दर्द के बारे में निवेदन किया। श्री प्रभुजी ने कृपावश अपने कर कमलों से मेरी पीठ को स्पर्श किया। उसी दिन से मेरी पीठ का दर्द पूर्णतया जाता रहा।

4. बच्चे का अशुभ नक्षत्रों में जन्म व श्री महाराज की कृपा–अप्रैल 1970 में मेरे घर लड़के का जन्म हुआ। यह लड़का **"मूलगडंत"** नक्षत्र में पैदा हुआ जो कि अत्यन्त अशुभ नक्षत्र माना जाता है। ऐसे नक्षत्र में पैदा होने वाला बालक पिता के लिए घातक समझा

जाता है। मेरे पूज्यपिता जी जो स्वयं पण्डितों का काम जानते हैं दूसरे पण्डितों से इस बारे में सहमत थे कि नवजात शिशु मेरे लिए अशुभ है। इससे सारा परिवार निराश हुआ। उन दिनों मैं घर से 40 मील दूर नौकरी पर था और घर वालों ने मेरी अनुपस्थिति में यह निश्चय किया कि बच्चा किसी को दे दिया जाए। मुझे ज्यों ही उनके निश्चय का पता चला मैं अवकाश प्राप्त करके घर गया। आश्चर्य की बात यही थी कि मुझे नवजात बच्चे का मुख देखने से भी मनाही की गई क्योंकि उनके अनुसार बच्चे का मुख देखना मेरे लिए अशुभ था। मैंने घर वालों को विश्वास दिलाया कि मैं सर्व शक्तिमान सत्ता की शरण ग्रहण कर चुका हूँ। अतः मेरा कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। साथ ही मैंने श्री महाराज जी को भी इस बारे में विस्तृत पत्र लिख दिया, शीघ्र ही श्री महाराज जी का उत्तर मिला। श्री महाराज जी ने मुझे पुष्प प्रसाद भेजा तथा सांत्वना दी कि बच्चा मेरे लिए बिल्कुल भी अनिष्टकारक नहीं होगा तथा आदेश दिया कि हम सहर्ष बच्चे का पालन-पोषण करें। श्री महाराज जी के चरण-कमलों की कृपा से मेरा कोई अनिष्ट नहीं हुआ। इसके विपरीत मुझे बच्चे के जन्म के एक साल के भीतर ही दो मुख्य लाभ हुए। (1) इसी दौरान बी.ए. की परीक्षा पास की (2) क्लर्क से हैड क्लर्क के रूप में पदोन्नति हुई।

5. पदोन्नति तथा मन भाया स्थानान्तरण–बी.ए. करने के कुछ समय बाद ही श्री महाराज की कृपा से मेरी पदोन्नति भी हो गई मुझे हैड क्लर्क बनाकर विभाग ने मेरा तबादला चम्बा (हिमाचल-प्रदेश) को कर दिया। यह नया स्थान मेरे घर से 250 मील की दूरी पर है। घर की परिस्थितियाँ मुझे इतनी दूर जाने की इजाजत नहीं देती थीं। मैंने श्री महाराज जी सेवा में पत्र भेजा। प्रभु जी ने मुझे पुष्प प्रसाद भेजा तथा लिखा कि जहाँ भी मैं चाहूँ मेरा तबादला हो जायेगा। मुझे चम्बा चले जाने का आदेश मिल चुका था इसी बीच मेरे विभाग के एक निकटवर्ती कार्यालय (सुन्दरनगर-हिमाचल प्रदेश) के हैड क्लर्क ने चम्बा जाने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी तथा इसके लिए प्रार्थना पत्र भी दे दिया। इधर मैंने भी चम्बा के बजाय सुन्दरनगर जाने के लिए प्रार्थना पत्र भेज दिया। परिणामस्वरूप हम दोनों का तबादला अपनी-अपनी मन-पसन्द जगहों पर हो गया यह सभी श्री प्रभुजी की कृपावश हुआ। इस प्रकार पग-पग पर श्री महाराज जी की कृपा प्राप्त करते-करते मैं वर्ष 2000 में सेवानिवृत हो गया।

श्री प्रभुजी के चरणारविन्द से परम कल्याण का स्रोत बहता है उनकी कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है इसका मुझे पर्याप्त अनुभव हो चुका है तथा इसी प्रकार से मेरे दूसरे गुरु-भाइयों को भी हो रहा है।

श्रीमद्भागवत में ध्यान–विधि

–आचार्य बलरामजी शास्त्री

भक्त को भगवान् के सानिध्य में पहुँचने या भगवान् को प्राप्त करने के लिए जो उपाय बतलाये गये हैं, उनमें 'ध्यान–विधि' सर्वोपरि है। श्रीमद्भागवत् महापुराण में चार स्थलों पर ध्यान–विधि का वर्णन है। श्रीमद्भागवत् महापुराण भक्ति–पक्ष का सर्वोपरि ग्रन्थ है। अनेकानेक धर्मों में 'ईश्वर' की आराधना के विविध प्रकार हैं। 'सनातनी' हिन्दू जनता अपने अभीष्ट देवों की षोडशोपचार–विधि से पूजा करती है, अर्चना करती है, जो मूर्तिपूजा परम्परा का एक वैज्ञानिक आधार है। साधारण जन या अबोध बालक निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, परब्रह्म परमात्मा का ध्यान सरलता से नहीं कर सकते। असमंजस में पड़ जाते हैं, पड़ सकते हैं। उनका सरल हृदय, अविकसित विचार, निर्गुण ब्रह्म को समझने में असमर्थ हो जाता है। मूर्ति–पूजा सर्वसाधारण को भगवान् या अभीष्ट देव की रूपरेखा समझाने में सरल मार्ग बन जाती है। लक्ष्य तक पहुँचाने की वह सीधी पगडंडी है। घोर अन्धकार में ढूँढ़ने के लिए टिमटिमाता प्रकाश है। इसी पद्धति से मीरा ने अपने साँवरिया को पाया। सूरदासजी ने बालकृष्ण को अपनाया। सन्त तुलसीदास जी ने धनुष–बाण लिये श्री राम का दर्शन किया।

मूर्ति–पूजा में भी 'साधना' की अपेक्षा होती है। 'तन्मयता' का आधार लेकर बढ़ना होता है। यदि तन्मयता नहीं तो कुछ हाथ नहीं लग सकता। दुष्ट और चंचल मन यहाँ भी तर्कों और कुतर्कों में फँसता उलझता चला जाता है। मूर्ति–पूजा करते समय वह मन पुत्र, पौत्र, कलत्र में ध्यान लगा देता है। मन स्थिर हो नहीं पाता। मन को वायु के वेग के समान चंचल कहा गया है। यह सब होते हुए भी साधक पूजन, अर्चन–विधि को अपनाकर चलता रहता है। एक जन्म में न सही, अनेक जन्मों में ही सही, कभी तो गन्तव्य स्थान मिल ही जायेगा।

'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'

महर्षि व्यासजी ने पूजन तथा अर्चन–विधि को कर्मकाण्ड ही माना है। महर्षि व्यासजी ने ध्यान–धारणा द्वारा भगवच्चिन्तन को सर्वोपरि माना है। ध्यान–विधि का सहारा लेकर भक्त अपने भगवान को पाने में निश्चित सफलता प्राप्त कर सकता है। यद्यपि मन तो यहाँ भी बाधक बनता है, किन्तु चंचल मन को वश में करने के लिए उपाय बतलाये गये हैं।

ध्यान–विधि

ध्यान–विधि में अधिक आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। शुद्ध वस्त्र पहनकर समतल आसन पर बैठ जाइये। कुशासन या कम्बलासन पर बैठकर 'पद्मासन' लगा लें। अपनी दोनों हथेलियाँ गोदी में रखें या घुटनों पर। बिल्कुल सीधे बैठना चाहिए। दक्षिण दिशा को छोड़कर किसी भी दिशा

में मुख करके बैठना ठीक है। यदि सूर्यदेव की ओर मुख करके बैठिये तो अति उत्तम है। नेत्रों को अर्द्धनिमीलित करें, अर्थात् आधा मूँद लें। दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर जमा दें। पहले यही अभ्यास करें। चंचल मन को नियन्त्रण में रखने के लिए **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** मन्त्र का जप करते रहना चाहिये। कुछ ही दिनों के अभ्यास से नासिका के अग्रभाग में 'दृष्टि' जमने लगेगी। अब क्रमशः परब्रह्म परमात्मा के सगुण रूप–भगवान् विष्णु चतुर्भुज रूप का ध्यान करने के लिए 'धारणा' का सहारा लीजिए। धारणा का सहारा ही सिद्धि दिलाता है। विष्णुभगवान् के चरण–कमल का ध्यान करने के पूर्व उन चरणों का कमल के पुष्प के समान लाल रंग के है। ऊपर के भाग तीसी के फूल या नील कमल के समान नीले वर्ण के हैं। उनका सारा शरीर ही नीले कमल के समान है। चरणों के बाद क्रमशः घुटने, कटि, वक्षःस्थल, गर्दन और अन्त में प्रसन्न वदन अर्थात् मुस्कराते हुए मुख–कमल का ध्यान करें। मस्तक के ऊपर अनेकों रत्नों से जटित मुकुट, पैरों में पैजनी, कमर में करधनी, बाहों में बिजायठ, वक्षःस्थल के मध्य में कौस्तुभमणि, सारे शरीर पर पीला रेशमी वस्त्र और चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म हैं।

आजकल के चित्रकार भगवान विष्णु के कई प्रकार के चित्र बनाते हैं, पर श्रीमद्भागवत पुराण में कमल के ऊपर ही भगवान् को विराजमान बताया गया है। ध्यान का नित्य अभ्यास कीजिए। दिन में प्रातःकाल, दोपहर और सायंकाल, तीन बार अभ्यास करना चाहिये। शनैः–शनैः सफलता मिलने लगेगी। श्रीमद्भागवत् में चार स्थलों पर ध्यान की विधि समझाने का जो प्रयास किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि विधि–पूर्वक ध्यान करने से भगवान् को समझा और पाया जा सकता है।

श्रीमद्भागवत् के द्वितीय स्कन्ध में लिखा है कि भगवान् के चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और कमल हैं। उनके मुखमण्डल पर प्रसन्नता विराजमान है। मन्द–मन्द मुस्कराते हुए वे अपने भक्त के ऊपर आनन्द की वर्षा कर रहे हैं। उनके नेत्र कमल के समान रतनारे हैं। कदम्ब के फूल के समान पीला पीताम्बर है। भुजाओं में अनेकों रत्नों से जटित बिजायठ है। सिर पर अति सुन्दर मुकुट है। कानों में कुण्डल लटक रहे हैं। भगवान् के दोनों चरण कमल की विकसित कर्णिका पर विराजमान हैं। कण्ठ में कौस्तुभमणि और हृदय में श्रीवत्स–चिन्ह है। वक्षःस्थल पर कभी न कुम्हलाने वाली वनमाला है। कमर में सुन्दर करधनी और अंगुलियों में जड़ाऊ अंगूठियाँ हैं। हाथों में कंगन और चरणों में नुपूर हैं। सिर के बालों की सुन्दर घुंघराली लटें लटक रही हैं। मुखकमल मन्द–मन्द मुस्कान से खिल रहा है। इस प्रकार वे प्रभु अपने उनमुक्त हास और अनोखी चितवन से अपने भक्तजनों के ऊपर अनुग्रह की वर्षा कर रहे हैं।

(श्रीमद्भागवत् 2/2/8–11)

इस प्रकार की 'धारणा' द्वारा भगवान् के ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। महर्षि व्यासजी ने स्पष्ट कर दिया है कि भगवान् के रूप का ध्यान पहले चरण कमलों से क्रमशः प्रारम्भ करके सिर तक का करना चाहिये।

महर्षि कपिलजी ने भी अपनी माता देवहूतिजी को भगवान के ध्यान की विधि समझायी है। यह प्रसंग तीसरे स्कन्ध में है। भगवान् का मुख–मण्डल आनन्द से प्रफुल्लित है। दोनों नेत्र कमल–कोश के समान रतनारे हैं। शरीर का रंग नील कमलदल के समान है। (अलसी के पुष्प के समान भी कहा जाता है।) चारों हाथों में भगवान् क्रमशः शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये हुए हैं। शरीर पर कमल के पीले केसर के समान रेशमी वस्त्र हैं जो घुटनों के नीचे तक लटक रहे हैं। वक्षस्थल पर श्रीवत्स–चिन्ह है। गले की वनमाला चरणों तक लटक रही है। वनमाला के चारों ओर पुष्पों की सुगन्ध पान करने के लिए भौरें गुन–गुना रहे हैं। भगवान् के समस्त अंगों में तद्नुकूल रत्न और मणियों के आभूषण सुशोभित हो रहे हैं। कमल की पीली कर्णिका के ऊपर भगवान के चरण कमल विराजमान हैं। भगवान का दर्शनीय सलोना श्यामसुन्दर मुख अति शान्त और मनोहारी है। बड़ी मनोहर झाँकी है। वह अपने भक्तजनों पर कृपा करने के लिए आतुर हो रहे हैं।

(श्रीमद्भा. 3/28/13–17)

बालक ध्रुव को नारदजी का उपदेश

श्रीमद्भागवत् के चतुर्थ स्कन्ध में महर्षि नारदजी ने बालक ध्रुव को उस समय भगवान् के ध्यान की विधि समझायी, जब उन्होंने देखा कि क्षत्रिय–बालक भगवान् से मिलने के लिए कटिबद्ध है। सौतेली माता के व्यंग्य–बाण से मर्माहत है। नारदजी ने बालक ध्रुव के दृढ़ निश्चय को जानकर भगवान् के ध्यान की विधि समझाकर भगवान् के साक्षात्कार सहित, ध्रुव के अमर–पद के लिये उनका पथ–प्रशस्त कर दिया।

नारद जी ने बताया–'बेटा ध्रुव! भगवान के नेत्र और उनका मुखकमल सर्वदा प्रसन्न रहता है। भगवान की मुखाकृति से ही अवगत होता है कि वे अपने भक्तों को वर देने के लिए उद्यत हैं। भगवान् के कपोल, नासिका आदि अति मनोहर हैं, मनोरम हैं। उनके सभी अंग–उपांग अपनी–अपनी निराली छटा बिखेर रहे हैं और तरुण अवस्था के द्योतक हैं, सुन्दर एवं सुडौल हैं। दोनों नेत्र कमल के पुष्प के समान लाल–लाल हैं। ओठ भी लाल हैं। भगवान् के वक्ष–स्थल पर 'श्रीवत्स' का स्पष्ट चिन्ह है। उनका शरीर सजल जलद के समान श्यामल है या अलसी के पुष्प के समान नीला है। समस्त अंगों से विचित्र आभा झलक रही है। गले में वनमाला है और चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और कमल विराजमान हैं। सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, बाहों में केयूर, पाँवों में नुपूर सुशोभित है। पूरे शरीर पर पीला रेशमी वस्त्र फहरा रहा है। कटि में रत्नों से जड़ी करधनी चमक रही है। भगवान् का दर्शनीय रूप सर्वदा आनन्द की वर्षा करता रहता है।' इस प्रकार भगवान् के रूप का वर्णन करके नारदजी ने बालक ध्रुव को धारणा का सहारा देकर आगे समझाया–'बेटा ध्रुव! उपरोक्त विधि से भगवान की रूप–माधुरी का ध्यान करने के लिए 'धारणा' का सहारा लेने के लिए चित्त को एकाग्र करना पड़ता है। यह कामना करनी चाहिए–'मेरे प्रभु! मेरी ओर अनुराग भरी दृष्टि से निहार रहे हैं और मुझे वर देने के लिए उत्सुक हैं। इस प्रकार का ध्यान करने से मन एकाग्र हो जाता है। चित्त की

चंचलता भी प्रभु की कृपा से समाप्त हो जाती है। मन परमानन्द में मग्न हो जाता है, तल्लीन हो जाता है। तल्लीनता के कारण वह भगवान के रूप में ध्यान से हटता ही नहीं।

(श्रीमद्भा. 4/8/45–52)

नारदजी ने बालक ध्रुव को भगवान के ध्यान की विधि समझाकर उनके मानस–पूजन की विधि भी समझायी। नारदजी द्वारा समझायी गयी विधि से बालक ध्रुव ने भगवान् को प्राप्त कर लिया और वह अमरपद भी पाया जो आजतक किसी अन्य को नहीं मिला।

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में स्वयं भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपने परम प्रिय भक्त उद्धवजी को भगवान के ध्यान की विधि समझायी है। उद्धवजी बहुत भाग्यवान् थे। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम प्रिय सखा और भक्त थे। एक बार भगवान् ने उद्धव जी को ब्रह्मा और शंकरजी से भी अपना प्रिय बतलाया–**'न तथा मे प्रियतम आत्मयेनिर्न शंकरः।'** (श्रीमद्भा. 11/14/15)। ऐसे उन उद्धव को अपने ध्यान की विधि समझाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा था–प्रिय उद्धव! मेरी माया से मोहित बुद्धिवाले विद्वज्जन अपने–अपने कर्म, संस्कार और अपनी–अपनी रुचि के अनुसार आत्मकल्याण के अनेकों साधन बतलाते हैं। पूर्वमीमांसक धर्म को, साहित्य के उपासक यश को, कामशास्त्री काम को तथा योगवेत्ता शमदमादि को आत्म–कल्याण का साधन मानते हैं। दण्ड नीतिकार ऐश्वर्य को, त्यागीजन त्याग को और लोकायतिक भोग को ही जीवन का परम लाभ (आत्म–कल्याण का साधन) मानते हैं। इसी प्रकार कर्मयोगीजन पुरुषार्थ को महत्त्व देते हैं। प्रिय उद्धव! ये सभी कर्म नष्ट होने वाले हैं। कर्मों का फल समाप्त होने पर दुःख–ही–दुःख मिलता है।

(श्रीमद्भा. 11/14/9–11)

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उद्धवजी को आगे समझाते हुए कहा–'प्रिय उद्धव! जो सर्वप्रकार से संग्रह परिग्रह से रहित है, अकिंचन है, जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके शान्त और समदर्शी हो गया है, जो मेरी प्राप्ति से मेरे सानिध्य का अनुभव करके सदा–सर्वदा सन्तोष का अनुभव करता है, उसके लिए आकाश का एक–एक कोना 'आनन्द' से भरा हुआ है।' ध्यान की विधि समझाते हुए भगवान् ने उद्धवजी को बताया–'प्रिय उद्धव! मेरा ध्यान करने के लिए समतल भूमि पर आसन बिछाकर सीधा बैठ जाए। सीधा बैठकर अपने दोनों हाथों को अपनी गोद में या अपने दोनों घुटनों पर रख ले और अपनी दृष्टि नासिका के अग्रभाग में जमा ले। नेत्र अर्द्धनिमीलित कर ले, अर्थात् आधी आँखें मूँद लें। प्राणायाम द्वारा अपनी नाड़ियों का शोधन कर ठीक कर ले। जो प्राणायाम की विधि न जानता हो वह प्राणायाम करना किसी जानकार से सीख ले।' प्राणायाम में श्वास को चढ़ाने और क्रमशः उतारने की विधि न जानने पर कभी–कभी धोखा हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने (पूर्व की तीनों ध्यान–विधियों से) यहाँ कुछ विस्तार से समझाते हुए उद्धव को सावधान किया है। भगवान ने आगे बताया–'प्रिय उद्धव! प्राणायाम के अभ्यास में 'ओंकार' के

जप की भी आवश्यकता है। प्रतिदिन प्रातः, दोपहर और सायंकाल–तीन बार सध्या–विधि के समान ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।'

भगवान् ने स्पष्ट कहा है–'एक मास में इस प्रकार के अभ्यास से 'प्राणवायु' वश में हो जाती है। प्राणवायु को वश में करके मन को नियन्त्रित करने के लिए निम्न 'धारणा' का सहारा ले। (इसी धारणा से भगवान् का ध्यान सफल हो जायेगा।) ऐसा चिन्तन करे–'हृदय एक कमल है। वह शरीर के भीतर इस प्रकार स्थित है कि उसका मुख नीचे की ओर और नाल ऊपर है। वह कमल नीचे से ऊपर की ओर धीरे–धीरे उठता है और पूर्णरूप से विकसित हो जाता है। उसकी पंखुड़ियाँ चारों ओर खिल जाती हैं। उसके ऊपर पीली कर्णिका पर मुझ भगवान के दोनों चरण विराजमान करे। चरणों के तलवे लाल–लाल कमलदल के समान हैं। उनसे आभा निकल रही है। चरणों के ऊपरी भाग का रंग नीले कमल के समान है या अलसी के पुष्प के समान नीलाभ है।' भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे समझाया–'मेरा यह रूप ध्यान के लिये अति मंगलमय है। मेरे रोम–रोम से शान्ति टपकती है। मुखमण्डल अति प्रफुल्लित और अति मनोरम है। सर्वदा प्रसन्नता की छटा बिखरती रहती है। चरणों के ऊपर घुटनों तक लम्बी भुजाएँ हैं। पूरे शरीर पर पीताम्बर फहराता रहता है। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह है। बहुत सुन्दर मनोहर ग्रीवा है। मरकत मणि के समान स्निग्ध कपोल हैं। मुखमण्डल पर अनोखी मन्द–मन्द मुस्कान की छटा विराजमान है। दोनों कान मकराकृत कुण्डलों से शोभा पा रहे हैं। चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और कमल शोभायमान हो रहे हैं। गले में वनमाला लटक रही है। चरणों में नूपुरों की शोभा है। वक्षः स्थल में कौस्तुभमणि और कमर में करधनी, बाहों में भुजबन्ध चमकते हैं। मेरा अंग प्रत्यंग अति मनोहारी है। मेरे सभी अंगों से आनन्द की वर्षा होती रहती है। ऐसे मेरे स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।' भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे समझाया–'प्रिय उद्धव! मन के द्वारा समस्त इन्द्रियों के विषयों को खींच ले। मन को बुद्धिरूप 'सारथी' की सहायता से मेरे में लगा दे। मन यदि मेरे किसी अंग पर जम जाए तो उसे जमा रहने दे। शनैः शनैः मन को अन्यान्य अंगों पर से हटाकर मेरे मुखमण्डल पर स्थिर कर दे। जब मेरे मुख मण्डल पर ध्यान जम जाय तो शनैः–शनैः मेरे स्वरूप को उस कमल की कर्णिका पर से हटाकर आकाश में स्थित करे। मेरे अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का चिन्तन न करे। इस प्रकार चित्त से वस्तु की अनेकता और तत्सम्बन्धी ज्ञान तथा उनकी प्राप्ति के लिये होने वाले कर्मों का भ्रम शीघ्र ही दूर हो जाता है।

(श्रीमद्भागवत 11/14/32–36)

अमृत कण

ब्रह्मभूत : प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।
(श्रीमद्भागवतगीता)

ब्रह्मभाव को प्राप्त पुरुष का आत्मा प्रसन्न होता है, न वह शोच करता है, न आकांक्षा करता है, सब भूतों में समान भाव रखता हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त करता है।

◆ ◆ ◆

महात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा।
—नारदपाञ्चरात्र

विशुद्ध अवस्था में यह एक भक्तिरस है किन्तु जब इसमें सत्व, रज और तम त्रिगुण का मेल हो जाता है तब यह भक्ति तीन, नौ, इक्यासी और आगे चलकर अनन्तविध हो जाती है।

◆ ◆ ◆

तावन्निशीथवेताला वल्गन्ति हृदि वासनाः।
एकतत्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।।
—योगवाशिष्ठ

जब तक एक तत्त्व के दृढ़ अभ्यास से मन को पूर्णरूप से जीत नहीं लिया जाता तब तक अर्द्धरात्रि में नृत्य करने वाले बेतालों के समान वासनाऐं हृदय में नृत्य करती रहती हैं।

◆ ◆ ◆

निमज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्।।
(श्रीमद्भागवत्)

जिस प्रकार पानी में डूबते हुए प्राणियों के लिए सुदृढ़ नौका ही एकमात्र सहारा है, उसी प्रकार भयंकर संसार समुद्र में डूबते–उतरते हुए अत्यन्त दीन–दुःखी मनुष्यों के लिए अत्यन्त शान्त ब्रह्म वेत्ता साधु ही सबसे बड़े सहारे हैं।

●●●

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।

कठोपनिषद् 2/2/13

अर्थात् – जो नित्यों का भी नित्य है, चेतनों का भी चेतन है और अकेला ही इन अनेकों जीवों के कर्मफल भोगों का विधान करता है, उस अपने अन्दर रहने वाले पुरुषोत्तम को जो निरन्तर देखते हैं, उन्हीं को सदा अटल रहने वाली शान्ति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा